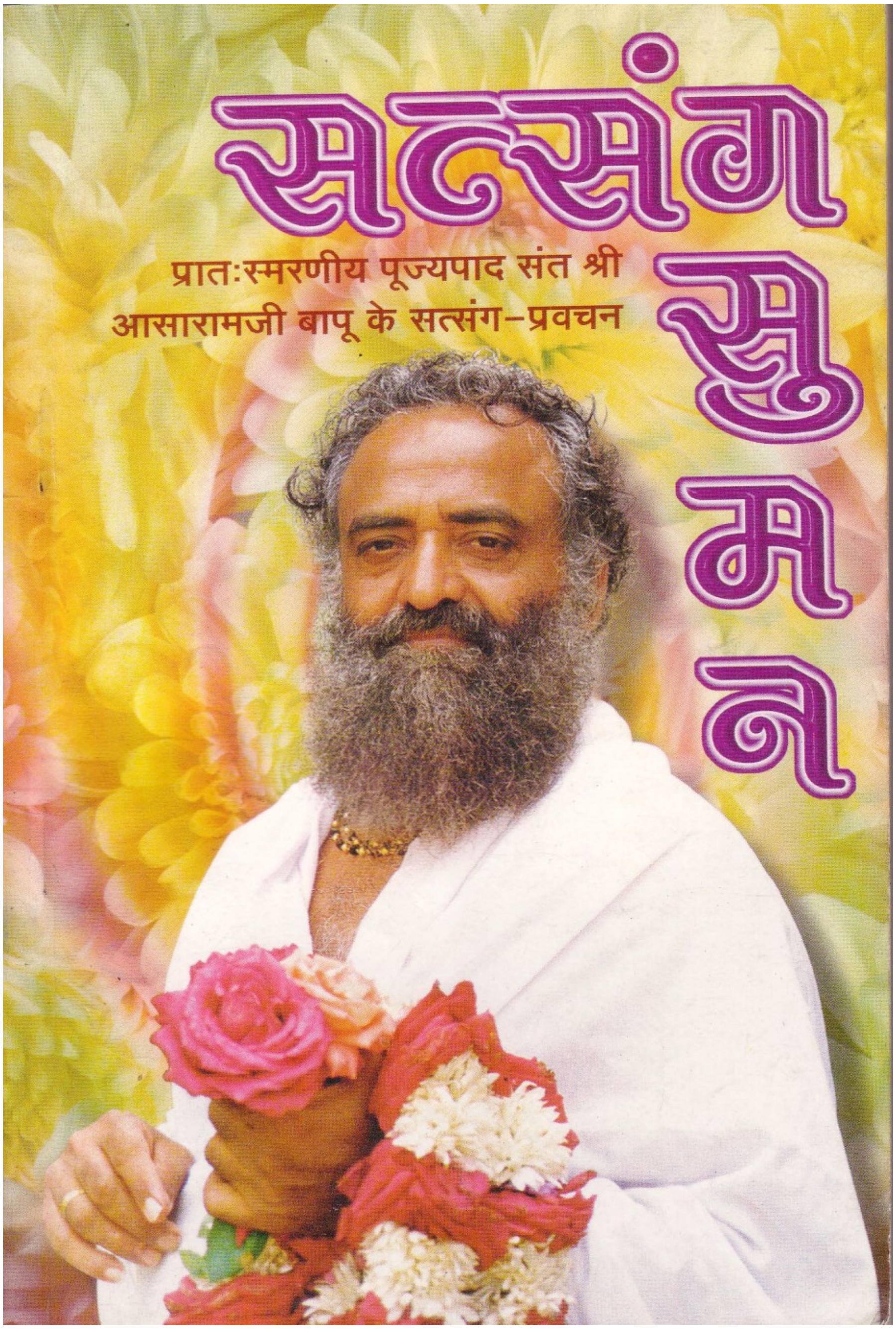
सत्संग सुमन

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन



प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

सत्संग सुमन

पूज्य बापू का पावन संदेश

हम धनवान होंगे या नहीं, यशस्वी होंगे या नहीं, चुनाव जीतेंगे या नहीं इसमें शंका हो सकती है परन्तु भैया ! हम मरेंगे या नहीं, इसमें कोई शंका है? विमान उड़ने का समय निश्चित होता है, बस चलने का समय निश्चित होता है, गाड़ी छूटने का समय निश्चित होता है परन्तु इस जीवन की गाड़ी के छूटने का कोई निश्चित समय है?

आज तक आपने जगत का जो कुछ जाना है, जो कुछ प्राप्त किया है... आज के बाद जो जानोगे और प्राप्त करोगे, प्यारे भैया ! यह सब मृत्यु के एक ही झटके में छूट जायेगा, जाना अनजाना हो जायेगा, प्राप्ति अप्राप्ति में बदल जायेगी।

अतः सावधान हो जाओ। अन्तर्मुख होकर अपने अविचल आत्मा को, निज स्वरूप के अगाध आनन्द को, शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लो। फिर तो आप ही अविनाशी आत्मा हो।

जागो.... उठो..... अपने भीतर सोये हुए निश्चयबल को जगाओ। सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को अर्जित करो। आत्मा में अथाह सामर्थ्य है। अपने को दीन-हीन मान बैठे तो विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं जो तुम्हें ऊपर उठा सके। अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये तो त्रिलोकी में ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके।

सदा स्मरण रहे कि इधर उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है। अतः वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है। अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं। तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधना-काल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहार काल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ। दत्तचित्त होकर हर कोई कार्य करो। सदा शान्त वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो। विचारवन्त एवं प्रसन्न रहो। जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो। सबसे स्नेह रखो। दिल को व्यापक रखो। आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निवेदन

हर मनुष्य चाहता है कि वह स्वस्थ रहे, समृद्ध रहे और सदैव आनंदित रहे, उसका कल्याण हो। मनुष्य का वास्तविक कल्याण यदि किसी में निहित है तो वह केवल सत्संग में ही है। सत्संग जीवन का कल्पवृक्ष है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा हैः

बिनु सत्संग विवेक न होई राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सतसंगत मुद मंगल मूला सोई फल सिचि सब साधन फूला।।

'सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्रीरामजी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में नहीं मिलता। सत्संगति आनंद और कल्याण की नींव है। सत्संग की सिद्धि यानी सत्संग की प्राप्ति ही फल है। और सब साधन तो फूल हैं।'

सत्संग की महत्ता का विवेचन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास आगे कहते हैं-

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरे कोटि अपराध।।

आधी से भी आधी घड़ी का सत्संग यानी साधु संग करोड़ों पापों को हरने वाला है। अतः

करिये नित सत्संग को बाधा सकल मिटाय।
ऐसा अवसर ना मिले दुर्लभ नर तन पाय।।

हम सबका यह परम सौभाग्य है कि हजारो-हजारों, लाखों-लाखों हृदयों को एक साथ ईश्वरीय आनन्द में सराबोर करने वाले, आत्मिक स्नेह के सागर, वेदान्तनिष्ठ सत्पुरूष पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू सांप्रत काल में समाज को सुलभ हुए हैं।

आज के देश-विदेश में घूमकर मानव समाज में सत्संग की सरिताएँ ही नहीं अपितु सत्संग के महासागर लहरा रहे हैं। उनके सत्संग व सान्निध्य में जीवन को आनन्दमय बनाने का पाथेय, जीवन के विषाद का निवारण करने की औषधि, जीवन को विभिन्न सम्पत्तियों से समृद्ध करने की सुमति मिलती है। इन महान विभूति की अमृतमय योगवाणी से ज्ञानपिपासुओं की ज्ञानपिपासा शांत होती है, दुःखी एवं अशान्त हृदयों में शांति का संचार होता है एवं घर संसार की जटिल समस्याओं में उलझे हुए मनुष्यों का पथ प्रकाशित होता है।

ऐसे हृदयामृत का पान कराने वाले पूज्यश्री की निरन्तर सत्संग-वर्षा से कुछ बिन्दू संकलित करके लिपिबद्ध आपके करकमलों में प्रस्तुत है।

ऋषियों की यह पावन वाणी तर जाते जिससे सब प्राणी।
गुरूवर के अनमोल वचन प्रस्तुत यह 'सत्संग सुमन'।।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अहमदाबाद आश्रम

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग उद्यान के सुमन

विवेकपूर्ण दृष्टि

जिनको मनुष्य जन्म की महत्ता का पता नहीं, वे लोग देह के मान में, देह के सुख में, देह की सुविधा में अपनी अक्ल, अपना धन, अपना सर्वस्व लुटा देते हैं। जिनको अपने जीवन की महत्ता का पता है, जिन्हें वृद्धावस्था दिखती है, मौत दिखती है, बाल्यावस्था का, गर्भावास का दुःख जिन्हें दिखता है, विवेक से जिन्हें संसार की नश्वरता दिखती है एवं संसार के सब संबंध स्वप्नवत दिखते हैं, ऐसे साधक मोह के आडंबर और विलास के जाल में न फँसकर परमात्मा की गहराई में जाने की कोशिश करते हैं।

जिस तरह भूखा मनुष्य भोजन के सिवाय अन्य किसी बात पर ध्यान नहीं देता है, प्यासा मनुष्य जिस तरह पानी की उत्कंठा रखता है, ऐसे ही विवेकवान साधक परमात्मशांतिरूपी पानी की उत्कंठा रखता है। जहाँ हरि की चर्चा नहीं, जहाँ आत्मा की बात नहीं वहाँ साधक व्यर्थ का समय नहीं गँवाता। जिन कार्यों को करने से चित्त परमात्मा की तरफ जावे ही नहीं, जो कर्म चित्त को परमात्मा से विमुख करता हो, सच्चा जिज्ञासु व सच्चा भक्त वह कर्म नहीं करता। जिस मित्रता से भगवद् प्राप्ति न हो, उस मित्रता को वह शूल की शैया समझता है।

सौ संगति जल जाय,
जिसमें कथा नहीं राम की।
बिन खेती, बिन बाड़ी के,
बाढ़ भला किस काम की।।
वे नूर बेनूर भले,
जिस नूर में पिया की प्यास नहीं।

यह जीवन नरक है,
जिस जीवन में प्रभुमिलन की आस नहीं।।

वह मति दुर्गति है, जिसमें परमात्मा की तड़प नहीं। वह जीवन व्यर्थ है जिस जीवन में ईश्वर के गीत गूँज न पाए। वह धन बोझा है जो आत्मधन कमाने के काम न आए। वह मन तुम्हारा शत्रु है जिस मन से तुम अपने आपसे मिल न पाओ। वह तन तुम्हारा शत्रु है जिस तन से तुम परमात्मा की ओर न चल पाओ। ऐसा जिनका अनुभव होता है वे साधक ज्ञान के अधिकारी होते हैं।

जो व्यक्ति देह के सुख, देह की प्रतिष्ठा, देह की पूजा, देह के ऐश तथा देह का आराम पाने के लिए धार्मिक होता है, वह अपने आपको ठगता है। देह को एकाग्र रखने का अभ्यास करो।

कई लोग घुटना व शरीर हिलाते रहते हैं, वे ध्यान के अधिकारी नहीं होते, योग के अधिकारी नहीं होते। मन को एकाग्र करने के लिए तन भी संयत होने चाहिए।

एक बार भगवान बुद्ध परम गहरी शांति का अनुभव लेकर भिक्षुकों को कुछ सुना रहे थे। सुनाते सुनाते बुद्ध एकाएक चुप हो गये, मौन हो गये। सभा विसर्जित हो गई। किसी की हिम्मत न हुई तथागत से कारण पूछने की। समय बीतने पर कोई ऐसा अवसर आया तब भिक्षुओं ने आदरसहित प्रार्थना कीः

"भन्ते ! उस दिन आप गंभीर विषय बोलते-बोलते अचानक चुप हो गये थे, क्या कारण था?"

बुद्ध ने कहा, "सुनने वाला कोई न था, इसलिए मैं चुप हो गया था।"

भिक्षुकों ने कहाः "हम तो थे।"

बुद्धः "नहीं। किसी का सिर हिल रहा था तो किसी का घुटना। तुम वहाँ न थे। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, चित्त तब तक एकाग्र नहीं होगा, जब तक शरीर की एकाग्रता सिद्ध न हो।"

आप अपने तन को, मन को स्वस्थ रखिये। संसार का सर्वस्व लुटाने पर भी यदि परमात्मा मिल जाय तो सौदा सस्ता है और सारे विश्व को पाने से यदि परमात्मा का वियोग होता है तो वह सौदा खतरनाक है। ईश्वर के लिए जगत को छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन जगत के लिए कभी ईश्वर को मत छोड़ देना मेरे भैया ! ॐ.....ॐ.....ॐ....

ईश्वर के लिए प्रतिष्ठा छोड़नी पड़े तो छोड़ देना लेकिन प्रतिष्ठा के लिए ईश्वर को मत छोड़ना। स्वास्थ्य और सौन्दर्य परमात्मा के लिए छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए परमात्मा को मत छोड़ना क्योंकि एक न एक दिन वह स्वास्थ्य और सौन्दर्य, मित्र और सत्ता, पद और प्रतिष्ठा सब प्रकृति के तनिक से झटके से छूट जायेंगे। इसलिए तुम्हारा

ध्यान हमेशा शाश्वत ईश्वर पर होना चाहिए। तुम्हारी मति में परमात्मा के सिवाय किसी अन्य वस्तु का मूल्य अधिक नहीं होना चाहिए।

जैसे समझदार आदमी वृद्धावस्था होने से पहले ही यात्रा कर लेता है, बुद्धि क्षीण होने के पूर्व ही बुद्धि में ब्राह्मी स्थिति पा लेता है, घर में आग लगने से पहले ही जैसे कुआँ खुदाया जाता है, भूख लगने से पहले जैसे भोजन की व्यवस्था की जाती है, ऐसे ही संसार से अलविदा होने के पहले ही जो उस प्यारे से संबंध बाँध लेता है, वही बुद्धिमान है और उसी का जन्म सार्थक है।

जिसने मौन का अवलंबन लिया है, जिसने अपने चंचल तन और मन को अखंड वस्तु में स्थिर करने के लिए अभ्यस्त किया है, वह शीघ्र ही आत्मरस का अमृतपान कर लेता है।

रविदास रात न सोइये, दिवस न लीजिये स्वाद।
निशदिन प्रभु को सुमरिये, छोड़ि सकल प्रतिवाद।।

कई रात्रियाँ तुमने सो-सोकर गुजार दीं और दिन में स्वाद ले लेकर तुम समाप्त होने को जा रहे हो। शरीर को स्वाद दिलाते-दिलाते तुम्हारी यह उम्र, यह शरीर बुढ़ापे की खाई में गिरने को जा रहा है। शरीर को सुलाते-सुलाते तुम्हारी वृद्धावस्था आ रही है। अंत में तो.... तुम लम्बे पैर करके सो जाओगे। जगाने वाले चिल्लायेंगे फिर भी तुम नहीं सुन पाओगे। डॉक्टर और हकीम तुम्हें छुड़ाना चाहेंगे रोग और मौत से, लेकिन नहीं छुड़ा पायेंगे। ऐसा दिन न चाहने पर भी आयेगा। जब तुम्हें स्मशान में लकड़ियों पर सोना पड़ेगा और अग्नि शरीर को स्वाहा कर देगी। एक दिन तो कब्र में सड़ने गलने को यह शरीर गाड़ना ही है। शरीर कब्र में जाए उसके पहले ही इसके अहंकार को कब्र में भेज दो..... शरीर चिता में जल जाये इसके पहले ही इसे ज्ञान की अग्नि में पकने दो।

मुझे वेद पुरान कुरान से क्या ?
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ा दे कोई।।
मुझे मंदिर मस्जिद जाना नहीं।
मुझे प्रभु के गीत सुना दे कोई।।

साधक की दृष्टि यही होती है। साधक का लक्ष्य परमात्मा होता है, दिखावा नहीं। साधक का जीवन स्वाभाविक होता है, आडंबरवाला नहीं। साधक की चेष्टाएँ ईश्वर के लिए होती हैं, दिखावे के लिए नहीं। साधक का खान-पान प्रभु को पाने में सहयोगी होता है, स्वाद के लिए नहीं। साधक की अक्ल संसार से पार होने के लिए होती है, संसार में डूबने के लिए नहीं। साधक की हर चेष्टा आत्मज्ञान के नजदीक जाने की होती है, आत्मज्ञान से दूर जाने की नहीं।

साँझ पड़ी दिन आथम्या, दीना चकवी रोय।
चलो चकवा वहाँ जाइये, जहाँ दिवस-रैन न होय।।

चकवा चकवी को समझाता हैः

रैन की बिछड़ी चाकवी, आन मिले प्रभात।

सत्य का बिछड़ा मानखा, दिवस मिले न ही रात।।

हे चिड़िया ! सन्ध्या हुई। तू मुझसे बिछड़ जायेगी, दूसरे घोंसले में चली जाएगी किन्तु प्रभात को तू फिर मुझे मिल जायेगी लेकिन मनुष्य जन्म पाकर भी उस सत्य स्वरूप परमात्मा के सत्य से बिछड़नेवाला मनुष्य पुनः सत्य से न सुबह मिलेगा, न शाम को, न रात में मिलेगा न दिन में।

सत्य का, परमात्मा का बलिदान देकर तुमने जो कुछ पाया है, वह सब तुमने अपने साथ जुल्म किया है। ईश्वर को छोड़कर यदि अन्यत्र कहीं तुम अपना दिल लगा रहे हो तो अपने साथ शत्रुता कर रहे हो, अन्याय कर रहे हो। ॐ....ॐ....ॐ....

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमसांदयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

'अपने द्वारा संसार-समुद्र से अपना उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डालें क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

(श्रीमद् भगवदगीताः 6.5)

हे अर्जुन ! तूने यदि अपने मालिक से मन लगाया और अपने मन को चंचलता से, हलन-चलन से तथा प्रकृति के बहाव से रोका तो तू अपने-आपका मित्र है और यदि प्रकृति के बहाव में बहा तो अपने-आपका शत्रु है।

यह मन यदि संसार में उलझता है तो अपना ही सत्यानाश करता है और परमात्मा में लगता है तो अपना और अपने संपर्क में आने वालों का बेड़ा पार करता है। इसलिए कदम-कदम पर सावधान होकर जीवन व्यतीत करो क्योंकि समय बड़ा मूल्यवान है। बीता हुआ क्षण, छूटा हुआ तीर और निकले शब्द कभी वापस नहीं आते। निकली हुई घड़ियाँ वापस नहीं आतीं।

सरिता के पानी में तुम एक बार स्नान कर सकते हो, दो बार नहीं। दूसरी बार तो वह पानी बहकर न जाने कहाँ पहुँच जाता है। ऐसे ही वर्तमान भूत में चला गया तो फिर कभी नहीं लौटेगा। इसलिए सदैव वर्तमान काल का सदुपयोग करो।

रविदास रात न सोइये, दिवस न लीजिये स्वाद।
निशदिन प्रभु को सुमरिये, छोड़ि सकल प्रतिवाद।।

"कौन क्या करता है? कौन क्या कहता है?" इस झंझट में मत पड़ो। इसकी जात क्या है? उसकी जात क्या है? इसका गाँव कौन सा है? उसका गाँव कौन सा है?"

अरे ! ये सब पृथ्वी पर हैं और आकाश के नीचे हैं। छोड़ दो मेरे और तेरे नाम पूछने की झंझट। लोग यात्रा में जाते हैं तो सामने निहारते हैं- "कहाँ के हो? किस गाँव के हो? किधर से आये हो?" अरे भाई ! हमारा गाँव ब्रह्म है। हम वहीं से आये हैं। उसी में खेलते हैं और उसी में समाप्त हो जाएँगे। लेकिन इस भाषा को समझने वाला कोई नहीं मिलता। सब इस मुर्दे शरीर का नाम, गाँव पूछते हैं कि कहाँ से आये हो।

जो मिट्टी से पैदा हुआ है, मिट्टी में घूम रहा है और मिट्टी में ही मिलने को बढ़ रहा है, उसी का नाम, उसी का गाँव उसी का पंथ-सम्प्रदाय आदि पूछकर लोग अपना ही समय गँवाते हैं और संतों का भी समय गँवा देते हैं।

तुम्हारा गाँव और तुम्हारा नाम, सच पूछो तो एक बार भी यदि तुमने जान लिया तो बेड़ा पार हो जायेगा। तुम्हारा गाँव तुमने आज तक नहीं देखा। तुम्हारे घर का पता तुम दूसरों से भी नहीं पूछ पाते हो और स्वयं भी नहीं जानते लेकिन संत तो तुम्हें सच्चा पता बता रहे हैं फिर भी तुम अपने घर के पते को नहीं समझ पा रहे हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान एक सिपाही को चोट लगी और वह बुरी तरह जख्मी होकर बेहोश हो गया। साथी उसे अपनी छावनी में उठा लाये। डॉक्टरों ने इलाज किया तो वह अच्छा तो हो गया लेकिन अपनी स्मृति पूर्णतः खो बैठा। मनोवैज्ञानिकों को भी लाया गया लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। अपना नाम, पता, कार्ड, बिल्ला आदि सब खो बैठा था वह फौजी। मनोवैज्ञानिकों ने सलाह दी कि इसे अपने देश में घुमाया जाये। जहाँ इसका गाँव होगा, घर होगा, वहाँ इसकी स्मृति वापस जाग उठेगी और स्वयं ही अपने घर चला जायेगा। तब इसका पता चलेगा कि यह कौन है व कहाँ से आया है।

तदनुसार व्यवस्था की गई। दो आदमी साथ भेजे गये। इंग्लैंड के सभी रेलवे स्टेशनों पर उसे उतारा जाता और साइन बोर्ड दिखाये जाते कि कदाचित अपने गाँव का साइन बोर्ड देख लें और स्मृति जग जाए। लेकिन कहीं भी स्मृति न जगी। साथी निराश हो गये। वे अब तक लोकल ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। एक छोटा सा गाँव आया, गाड़ी रूकी। साथियों ने सोचा कि इसे नीचे उतारना व्यर्थ है लेकिन चलो चाय पीने उतर जाते हैं।

वह फौजी, जिसकी स्मृति की गहराई में उसका गाँव, उसका नाम चला गया था, रेलवे स्टेशन पर अपने गाँव का साईन बोर्ड देखते ही उसकी स्मृति जग आई। यह फाटक के बाहर हो गया और फटाफट चलने लगा। सड़कें, गलियों, मोहल्ले, लांघता हुआ वह अपने घर में पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि यह मेरी माँ है, यह मेरा बाप है। वह बोल पड़ाः This is my House. उसकी खोई स्मृति जाग गई।

सदगुरू भी तुम्हें अलग-अलग प्रयोगों से, अलग-अलग सुख-दुःख से, अलग अलग प्रक्रियाओं से तुम्हें यात्रा कराते हैं ताकि तुम कदाचित अपने गाँव की गली को देख लो, शायद अपना पुराना घर देख लो। जहाँ से तुम सदियों से निकल आये हो, उस घर की स्मृति तुम खो बैठे हो। अब शायद तुम्हें उस घर का, उस गाँव का कुछ पता चल जाए। काश, तुम्हें स्मृति आ जाए।

जगदगुरू श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कई गाँव दिखाये-साँख्य के द्वारा, योग के द्वारा और निष्काम कर्म के द्वारा, लेकिन अर्जुन अपने घर में नहीं जा रहा था। श्रीकृष्ण ने कहाः "अर्जुन ! अब तेरी मर्जी। **यथेच्छसि तथा कुरु।"**

अर्जुन कहता हैः "नहीं प्रभु ! ऐसा न करें। मेरी बुद्धि उचित निर्णय नहीं ले सकती। मेरी बुद्धि गाँव में प्रवेश नहीं कर सकती।" तब श्री कृष्ण कहते हैं- "तो फिर छोड़ दे अपनी अक्ल और होशियारियों का भरोसा। छोड़ दे अपनी ऐहिक बातों का और मेरे तेरे का, जीने मरने का ख्याल। छोड़ दे धर्म-कर्म की झंझट को और आ जा मेरी शरण में।"

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

"सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।"

(गीताः 18.66)

डूब जा मेरी गहरी शांति में। तुझे पता चल जाएगा कि तेरा गाँव तुझमें ही है, कहीं आकाश-पाताल में नहीं।

हमारे ऐसे दिन कब आवेंगे कि हमें हमारे गाँव की प्यास जग जाएगी ताकि हम भी अपने आत्मगाँव में प्रविष्ट हो जाएँ !

दक्षिण भारत के एक सम्राट ने नई रानियों के कहने में आकर पुरानी रानी के पुत्र को घर से बाहर निकाल दिया। यद्यपि यह उस राजा की एक मात्र संतान थी और पुरानी रानी (बड़ी रानी) से उत्पन्न हुई थी लेकिन नई रानियाँ उस पुत्र के विरुद्ध हमेशा राजा के कान भरा करतीं थीं किः "यह तो अलमस्त है, पागल है, सारा दिन घूमता रहता है और गाता फ़िरता है। यह आपकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला रहा है।"

बार-बार सुनने पर बात असर कर जाती है। राजा भी उस राजकुमार को गिरी हुई नज़रों से देखने लगा और वे गिरी हुई निगाहें पक्की होती चली गईं। राजकुमार को पिता से प्रेम न मिलने के कारण, उसका प्रेम प्रभु की ओर होने लगा। वह टूटी फूटी भाषा में मस्तानों जैसा कुछ न कुछ गुनगुनाया करता था। उसके खान-पान, रहन-सहन की कोई व्यवस्था नहीं थी। जैसा भी आया खा लिया, पी लिया और जी लिया।

मैं सिरोही गया था तो सिरोही के भूतपूर्व राजा के पुत्र ने मुझे अत्यधिक श्रद्धा व आदर के साथ अपने महल में बुलवाया लेकिन उसके पहले उसका भाई मेरे पास कई बार आ गया। वह बहुत ही सीधा-सादा था। इतना सीधा-सादा कि सायकल पर ही आ जाता था। लोगों ने मुझे बताया कि राजा अपने इस भाई को पागल समझता है। यद्यपि वह पागल नहीं था, उसका स्वभाव ही सरलतायुक्त था। जैसे तैसे आदमी से बात करने लग जाये, जहाँ-तहाँ बैठने लग जाये, एकदम अपने साधारण वेश में, साधारण भाव में ही रखता था लेकिन सिरोही नरेश अपने पुराने सिरोहीपुर को संभालने में अधिक विश्वास रखता था।

कुटुम्बी और सिरोही के लोग समझते थे कि 'यह तो ऐसा ही है..... राजा का भाई तो है लेकिन ऐसा ही है।' वास्तव में वह ऐसा-वैसा कुछ न था, ठीक था, परंतु सांसारिक आडम्बर न संभाल पाया इसलिए लोगों ने 'ऐसा है.... वैसा है....' कहना प्रचारित कर दिया था।

इसी प्रकार उस सम्राट के एकमात्र पुत्र को भी द्वेषवश नई रानियों ने 'ऐसा है.... वैसा है....' कहना आरंभ कर दिया। दासियाँ भी उसे ऐसा ही कहती थीं। राजा ने जब उसे निकाल दिया तो वह सड़कों पर रहने लगा, मवालियों के साथ हो गया। ईश्वर के गीतों की बजाय उसके मुँह से तेरे मेरे के गीत गूँजने लगे। संग का बड़ा रंग लगता है। राजा ने देखा कि यह मेरे राज्य में रहकर मेरी ही इज्जत का कचरा कर रहा है तो उसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। अब वह भीखमंगों की टोली में शामिल हो गया। भीख माँगकर खा लेता और जहाँ कहीं सो लेता।

कुछ दिन किसी गाँव में रहता। गाँव वाले भीख देकर ऊब जाते तो दूसरे गाँव में चला जाता। ऐसा करते-करते वह कई वर्षों के बाद किसी मरुभूमि के गाँव में पहुँच गया। कपड़े जूते वही थे लेकिन फटकर चिथड़े हो गये थे। शरीर मैला और बदबूदार, वेशभूषा बिल्कुल दरिद्रों जैसी और पहुँचा है उस मरुभूमि के गाँव के एक छोटे से होटल के पास.... बिछाई है अपनी भीख माँगने की फटी पुरानी चदरिया।

"एक पैसा दे दो बाबू जी ! जूता लेने के लिए दे दो.... चाय पीने के लिए दुअन्नी-चवन्नी दे दो.... तुम्हारा भला होगा..." इस प्रकार की भीख माँगकर वह सम्राट पुत्र अपना गुजारा कर रहा है।

इधर सम्राट बूढ़ा होने जा रहा है। ज्योतिषियों ने कह दिया कि अब तुम्हारे नसीब में संतान नहीं है। राज्य परम्परा यदि सम्भालनी ही है तो जो एकमात्र पुत्र था उसे ही बुलाकर उसी का राजतिलक कर दो अन्यथा तुम्हारे कुल का अंत हो जाएगा।

राजा ने अपने पुत्र की तलाश में चारों ओर वजीर और सिपाही भेजे। वजीर के नेतृत्व में एक टुकड़ी घूमती-फिरती उसी मरुभूमि के छोटे से देहाती गाँव में पहुँची और देखा कि एक छोटे से होटल के सामने कोई भिखारी भीख माँग रहा है।

यद्यपि वर्षों का फासला बीत गया था लेकिन वजीर की बुद्धि पैनी थी। विलक्षण, बुद्धिमान वजीर ने रथ रोककर देखा कि जो 'एक पैसा दे दो...... कल से भूखा हूँ... कुछ खिला दो.... इस गरीब को.... तुम्हारा कल्याण होगा....' की आवाज लगा रहा है, इस आवाज में हमारे राजकुमार के कुछ गुण दिखाई पड़ते हैं।

वजीर रथ से उतरकर सामने गया तो वह वजीर को दुहाइयाँ देने लगाः "तुम्हारा कल्याण होगा... तुम्हारा राज और तुम्हारी इज्जत कायम रहेगी..... तुम्हारा पद और प्रतिष्ठा कायम रहेगी..... जनाब ! मुझे गरीब को पैसे दे दो।"

वजीर ने पूछाः "तू कहाँ से आया है?"

वह कुछ स्मृति खो बैठा था, बोलाः "मैं गरीब हूँ.... भीख माँगकर जैसे तैसे अपना जीवन यापन कर रहा हूँ।" वजीर पूछते पूछते उसे अपनी असलियत की ओर ले गया तो स्वतः ही ये प्रमाण प्रकट होने लगे कि यह वही राजकुमार है जिसकी तलाश में हम यहाँ तक पहुँचे हैं।

वजीर ने उससे कहाः "तुम तो अमुक राजकुमार हो और अमुक राजा के एकमात्र कुलदीपक हो। राजा तुम्हारा राजतिलक करने के लिए उत्सुक है और पागल ! तुम यहाँ बैठकर पैसे पैसे के लिए भीख माँगते हो?"

उसे तुरन्त स्मृति आ गई। उसने कहाः "मेरे स्नान के लिए गंगाजल लाओ। पहनने के लिए सुन्दर वस्त्राभूषणों की तैयारी करो और सुन्दर रथ की सजावट करो।"

एक क्षण में उसकी सारी दरिद्रता चली गई। सारे भिक्षापात्र एक क्षण में व्यर्थ हो गये और वह उसी समय सम्राटतत्व का अनुभव करने लगा।

वह राजा तो रानियों के चक्कर में आ गया था इसलिए राजकुमार को निकाल दिया था और बाद में अपने स्वार्थ के लिए बुला रहा था लेकिन परमात्मा रूपी राजा किसी रानी के चक्कर में नहीं आया फिर भी संतरूपी वजीर को तुम्हारी तरफ भेज रहा है कि तुम विषयों की भीख कब तक माँगते रहोगे? मुझे धन दे दो.... मकान दे दो... कुर्सी दे दो... सत्ता दे दो..... मुझे सुहाग दे दो.... मेरी मँगनी करा दो..... मुझे पुत्र दे दो.....' तुम्हें इस तरह भीख माँगता देख सुनकर संतरूपी वजीर भीतर ही भीतर बड़े दुःखी होते हैं कि अरे ! परमात्मा के इकलौते पुत्र !.... तुम सब परमात्मा के इकलौते पुत्र हो क्योंकि परमात्मा और तुम्हारे बीच तिनकामात्र भी दूर नहीं। परमात्मा का राज्य पाने का तुम्हारा पूर्ण अधिकार है, फिर भी तुम भीख माँगने से रुकते नहीं। अब रूक जाना...ठहर जाना भैया......! बहुत भीख माँग ली........... कई जन्मों से माँगते आए हो।

सम्राट का पुत्र तो दस बारह साल से भीख माँग रहा था इसलिए उसे वजीर की बात पर विश्वास आ गया और अपने राज्य को संभाल लिया, लेकिन तुम तो सदियों से भीख माँगते आ रहे हो इसलिए तुम वजीर के वचनों में विश्वास नहीं करते हो।

तुम्हें संदेह होता है किः "आत्मा ही परमात्मा है....? चलो, साईं कहते हैं तो ठीक है, लेकिन मेरा प्रमोशन हो जाए।"

"अरे ! चल, मैं तुझे सारे विश्व का सम्राट बनाये देता हूँ।"

"साँईं ! यह सब तो ठीक है, लेकिन मेरा यह इतना सा काम हो जाये।"

अरे ! कब तक ये कंकड़ और पत्थर माँगते रहोगे ? कब तक कौड़ियाँ और तिनके बटोरते रहोगे?

ईश्वर के राज्य के सिवाय और परमात्मा के पद के सिवाय, आज तक तुमने जो बटोरा है और जो बटोरोगे, आज तक तुमने जो जाना है और आज के बाद जो जानोगे, आज तक तुमने जो मित्र बनाये और आज के बाद जिन्हें संसार के मित्र बनाओगे, मृत्यु के एक झटके में सब के

सब छूट जाएँगे। दरिद्रता के पात्र कब तक सजाए रखोगे? भीख की चीजें कब तक अपने पास रखोगे?

छोड़ो दरिद्रता को.... उतार फेंको फटे पुराने चीथड़ों को..... फोड़ डालो भिक्षा के पात्रों को......'शिवोऽहं' का गान गूँजने दो.... 'मैं आत्मा परमात्मा हूँ.... मैं अपने घर की ओर कदम बढ़ाऊँगा.... हरि ॐ.... ॐ....ॐ....'

अपनी स्मृति को जगाओ......। दूसरा कुछ नहीं करना है। परमात्मा को लाना नहीं है, सुख को लाना नहीं है, सुख को पाना नहीं है, जन्म मरण के चक्कर को किसी हथौड़े से तोड़ना नहीं है लेकिन तुम केवल अपनी स्मृति को जगाओ। और कुछ तुम्हें नहीं करना है। तुम केवल परमात्मा की हाँ में हाँ मिलाकर तो देखो.....! गुरू की हाँ में हाँ मिलाकर तो देखो कि तुम कितने महान हो सकते हो......!

गुरु तुम्हें कहते हैं कि 'तुम अमृतपुत्र हो' तो तुम क्यों इन्कार करते हो? गुरू तुम्हें कहते हैं कि तुम देह नहीं हो तो तुम क्यों अपने को देह मानते हो? गुरू कहते हैं कि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं, तुम तो परमात्मावाले हो, गुरू की बात जरा मानकर तो देखो, भाई!

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदयेऽर्जुन तिष्ठसि।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

'हे अर्जुन ! शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।'

(गीताः 18.61)

सबके हृदय में मैं ईश्वर ज्यों का त्यों विराजमान हूँ लेकिन माया रूपी यंत्र से सब भ्रमित हो रहे हैं। माया का अर्थ है धोखा। धोखे के कारण ही हम दीन हीन हुए जा रहे हैं कि 'हे धन ! तू कृपा कर, सुख दे। हे कपड़े! तू सुख दे। हे गहने ! तू सुख दे।'

अरे ! ये जड़ चीजें तुम्हें कब सुख देंगी? कपड़े नहीं हैं? परवाह नहीं। गहने नहीं हैं। परवाह नहीं। अरे, खाने को नहीं हो तो भी परवाह नहीं करना। खाकर भी तो मरना ही है और बिना खाये भी इस शरीर को मरना ही है। तुम्हारे हृदय में परमात्मा का आराम परमात्मा के गीत हो तो बस... इतना भी पर्याप्त है। इसके सिवाय सब कुछ भी हो गया तो व्यर्थ है और यह हो गया तो सब कुछ की भी आवश्यकता नहीं। वह सब कुछ तुम्हारा दास हो जाएगा।

एक बार गुरू की बात मानकर तो देखो। एक बार छलांग लगाकर तो देखो ! सौदा मंजूर नहीं हो तो वापस कर देना भैया !....। ॐ.....ॐ.....ॐ....... अपने रिश्ते-नाते को कम से कम बढ़ाओ।

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, वे भी गये निराश।।

बहुत पसारा तुम्हारे दिल को बिखेर देता है, तुम्हारी गति को विक्षिप्त कर देता है फिर यहाँ कब तक पसारा करोगे.....? मरने वालों से कब तक मित्रता बनाते रहोगे? छूटने वालों को कब तक संभालोगे? तुम अपनी बुद्धि में यह ज्ञान अवश्य ही भर देना कि 'मैं उनकी बात कभी नहीं मानूँगा जो मुझे मौत से छुड़ा नहीं सकते। मैं उन चीजों को कभी जानने की कोशिश ही नहीं करूँगा जो मुझे गर्भावास में धकेल दें। वे कर्म मेरे लिए विष हैं, जो मौत के बाद मुझे मालिक से मिलाने में रूकावट देते हैं।

एक पौराणिक कथा हैः

शुकदेव जी जब सोलह वर्ष के हुए तो वे घर को छोड़कर जाने लगे। पिता वेदव्यास जी उनके पीछे पीछे आवाज लगाते हुए आ रहे हैं- "पुत्र....! सुनो.....रूको... कहाँ जाते हो....? मैं तुम्हारा पिता हूँ.....। रूको.....! रूको.....! रूको.....!"

पुत्र जा रहा है लेकिन उसे ध्यान आया कि पिता कोई साधारण पुरूष नहीं हैं अतः उनकी आशिष लेकर जाना ही उचित है।

शुकदेव जी वापस लौटे तो पिता ने उन्हें स्नेह से बाँहों में भर लिया। पिता पूछते हैं- "वत्स ! मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे थे?"

शुकदेव जी कहते हैं- "पिताजी ! मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ। फिर यदि आपको उचित लगे तो मुझे रोक लीजिएगा।

पिताजी ! किसी गाँव के बाहर नदी के किनारे एक ब्रह्मचारी रहता था। वह प्रातःकाल में उठकर संध्या-वंदन, आसन-प्राणायाम-ध्यान आदि करता था। ध्यान के बाद जब उसे भूख लगती तो अपना भिक्षापात्र लेकर वह गाँव में एक समय मधुकरी करता था।

धीरे-धीरे उस ब्रह्मचारी का संयम, साधना, ओज, तेज बढ़ता चला गया। उसी गाँव में दुल्हन बनकर कोई कुलटा स्त्री आई थी जो अपने पति के साथ एक दुमंजिले मकान के ऊपरी भाग में रहती थी।

ब्रह्मचारी जब गाँव में भिक्षा लेने निकला तो खिड़की से उस कुलटा स्त्री की नजर ब्रह्मचारी के तेजस्वी मुखमंडल पर पड़ी। वह युवा ब्रह्मचारी पर अत्यंत कामातुर हो गई। उसका पति थोड़ी देर पहले ही कुछ कार्यवश बाहर गाँव जाने के लिए घर से निकल चुका था। अतः उसने ब्रह्मचारी को ऊपर बुलाते हुए कहाः "इधर आओ.... मैं तुम्हें भिक्षा देती हूँ।"

वह ब्रह्मचारी सहज स्वभाव से भिक्षा हेतु ऊपर पहुँच गया तो उस कुलटा स्त्री ने दरवाजा बंद करके उसे भीतर घेर दिया और उसके साथ अनाधिकृत चेष्टा करने की कोशिश की।

ब्रह्मचारी घबराया। उसने मन ही मन परमात्मा को पुकारा किः "प्रभु ! मेरी साधना अधूरी न रह जाए ! हे मेरे नाथ ! यहाँ एक तू ही मेरा रक्षक है। काम तो वैसे भी तीर लिए खड़ा होता है। ऊपर से यह कामिनी अपना प्रयास कर रही है। हे राम ! तू कृपा करेगा, तो ही मैं बचूँगा, अन्यथा तो मारा जा रहा हूँ। तू कृपा कर, मेरे नाथ !"

उस ब्रह्मचारी की भीतरी प्रार्थना अन्तर्यामी परमात्मा ने सुन ली। बाहर गाँव जाने के लिए निकला हुआ कुलटा का पति साधन न मिलने के कारण एवं एकाएक शौच जाने का दबाव आने के कारण वापस घर लौट आया और द्वार पर आकर दस्तक दी।

पत्नी आवाज सुनकर घबराई कि अब क्या करू? युवक को कहाँ छुपाऊँ? घर में शौचालय था। उस शौचालय की मोरी (होद) में कुलटा ने उस युवक को धक्का देकर दबा दिया। उसके पति को शौच जाना था। वह शौचालय में गया और उसने उसी होद में विष्ठा, मलमूत्र त्यागा जिसमें ब्रह्मचारी को धकेला गया था। फिर वह आदमी उस कुलटा को भी साथ लेकर बाहर गाँव चला गया।

पिताजी ! वहाँ से वह ब्रह्मचारी नवयुवक बेचारा, जैसे बालक गर्भावास में औंधा होता है, ऐसा औंधा और बेहोश अवस्था में लुढ़कता-खिसकता हुआ एक दिन के बाद उस शौचालय की नाली में नीचे उतरा। जब सफाईवाले को उसमें सिर के बाल दिखे तो उसने उसे बाहर खींच लिया।

वह सफाई वाला निःसंतान था अतः उस मूर्छित ब्रह्मचारी को अपने घर ले गया और उपचार किया तब कहीं ब्रह्मचारी को होश आया। होश आया तो वहाँ से भागकर अपनी पुरानी झोपड़ी में गया। अच्छी तरह रगड़-रगड़कर स्नान किया। फिर सन्ध्या पूजन, प्राणायाम, ध्यान, जप आदि करके अपने आपको शुद्ध व स्वस्थ किया। उसे फिर से भूख लगी। दो चार दिन बाद उसे पुनः उसी गाँव में भिक्षा माँगने आना ही पड़ा। तब तक वह कुलटा स्त्री भी अपने घर पहुँच गई थी।

अब वह ब्रह्मचारी उस मोहल्ले से तो गुजरता भी नहीं था लेकिन पिताजी ! अनजाने में वह उस मोहल्ले से गुजरे और वह कुलटा स्त्री उसे पूड़ी पकवान आदि खिलाने के लिए आमंत्रित करे तो वह जाएगा क्या? वह स्त्री उसे कई-कई बार बुलाए और सुन्दर वस्त्र-आभूषण भी दे तो वह जाएगा क्या?

कई प्रलोभनों के बावजूद भी वह ब्रह्मचारी उस कुलटा के पास नहीं जाएगा क्योंकि उसे एक बार मोरी से गुजरने का अनुभव याद है.... उस नाली से पसार होने की उसको स्मृति है।

पिताजी ! एक बार नाली से गुजरा हुआ ब्रह्मचारी दोबारा हजार-हजार प्रलोभनों पर भी वापस नहीं जाता तो मैं तो हजारों नालियों से घूमता घूमता आया हूँ। हजारों माताओं की नालियों से पसार होता होता आया हूँ। पिता जी! अब मुझे क्षमा कीजिये। मुझे जाने दीजिए। संसार की झंझटों से मुझे बचने दीजिये।

मुझे जन्मों-जन्मों की उन मोरियों का स्मरण है कि माता की मोरी कैसी होती है। उस कुलटा स्त्री के शौचालय की मोरी तो एक दिन की थी लेकिन यहाँ नौ महीने और तेरह दिन मोरी में औंधे होकर लटकना पड़ता है। मल, मूत्र, विष्ठा आदि सब कुछ इसमें बना रहता है। माँ तीखा-तेज खाती है तो जलन पैदा होती है। मुँह से कीटाणु भी काटते रहते हैं कोमल चमड़ी को, उससे

जो पीड़ा होती है वह तो बच्चा ही जानता है। माँ की उस गंदी योनि से जन्म लेते समय बच्चे को जो पीड़ा होती है, वह जन्म देने वाली माँ की पीड़ा से दस गुना अधिक होती है। बच्चा बेचारा मूर्छित सा हो जाता है। वह रोना चाहता है लेकिन उसका रुदन भी बंद हो जाता है।

पिता जी ! वह पीड़ा और लोग क्या जानें? प्रसूति की पीड़ा जैसे माँ ही जानती है, वैसे ही जन्म की पीड़ा तो बेचारा बच्चा ही जानता है। ऐसी पीड़ा से मैं एक बार नहीं, अनंत-अनंत बार पसार होकर आया हूँ। पिताजी ! अब मुझे क्षमा कर दो। उन मोरियों में मुझे वापस मत धकेलो।"

"बहुत पसारा मत करो" क्योंकि बहुत पसारा करने से फिर मोरियों से पसार होना पड़ेगा, नालियों से पसार होना पड़ेगा। कभी दो पैरवाली माँ की नाली से पसार हुए हैं तो कभी चार पैरवाली माँ की नाली से पसार हुए हैं तो कभी आठ पैर वाली माँ की नाली से पसार हुए हैं तो कभी सौ पैरवाली माँ की नाली से भी हम पसार हुए हैं। अब कब तक उन नालियों से तुम पसार होओगे?

इन नालियों से अब उपराम हो जाओ और उस यार से मुलाकात कर लो ताकि फिर पसार न होना पड़े। उस यार से मिलो जिसकी मुलाकात के बाद फिर कभी नालियों में औंधा लटकना न पड़े।

अपने विवेक और वैराग्य को सतत् जागृत रखना। जरा सा भी वैराग्य कम हो जायेगा तो नाली तैयार ही समझो। जरा-सी विस्मृति हो जाए तो ब्रह्मचारी को वह कुलटा फिर से बुलाने को उत्सुक है।

आप सदा ही याद रखनाः "आखिर क्या? आखिर कब तक? इतना मिल गया, फिर क्या? इतना खा लिया, फिर क्या? इतना अखबारों में फोटो और नाम छपवा दिया, फिर क्या? आखिर क्या? आखिर क्या होगा?" इसलिए खूब सतर्क रहें।

संत एकनाथजी से एक सेठ ने कहाः "तुम भी गृहस्थी, मैं भी गृहस्थी। तुम बच्चों वाले, मैं भी बच्चों वाला। तुम सफेद कपड़ों वाले, मैं भी सफेद कपड़ों वाला लेकिन तुम्हें लोग इतना पूजते हैं, तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा है, तुम इतने खुश और निश्चिंत रहकर जी सकते हो लेकिन मैं इतना परेशान क्यों? तुम इतने महान और मैं इतना तुच्छ क्यों?"

एकनाथ जी ने देखा कि इसे सैद्धांतिक उपदेश देने से काम नहीं चलेगा। कुछ अलग ही प्रयोग किया जाय। एकनाथ जी ने उससे कहाः "बाबा ! सात दिन में तू मरने वाला है, फिर मुझसे यह सब पूछकर तू क्या करेगा?"

अब एकनाथ जी कहें और वह आदमी विश्वास न करे, ऐसा संभव ही नहीं था। एकनाथ जी ने तो कह दी थी आखिरी बात।

वह आदमी दुकान पर आया। बेचैन होकर घूम रहा है क्योंकि सात दिन में तो मौत है। उसके भीतर जो भी लोग था, हाय-हाय थी वह शांत हो गई। अपने प्रारब्ध का जो कुछ था वह

सहजता से उसे मिलने लगा। पैसे वसूल करने जाने वाला जो आदमी ग्राहकों में बिना लड़े-भिड़े वापस नहीं लौटता था। वह आज प्रेम से उनसे पैसे निकाल लाया।

शाम होने पर रोज शराब के घूँट लेने के अभ्यस्त जीव के सम्मुख आज शराब फीकी हो गई।

एक दिन बीता.... दूसरा दिन बीता.... तीसरा दिन बीता....। रोज भोजन में चटनी-नमक, अचार आदि चाहिए था, अब कोई आग्रह न रहा। जो जरा-जरा बात पर आग-बबूला हो जाता था उसे अब याद आता है कि सात दिन में से चार गये, तीन ही बाकी हैं। इतना खाकर आखिर क्या?

इस तरह पाँचवा दिन बीता। बहू पर जिसे क्रोध आ जाता था, बेटे जिसे नालायक दिखते थे, वही अब मौत को सामने देख रहा है कि तीन दिन बचे हैं। बेटों की नालायकी व गद्दारी वह भूल गया और सोचने लगाः

"इस संसार में ऐसा ही होता है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे गद्दारी और नालायकी करते हैं ताकि उनका आसक्तिपूर्ण चिन्तन नहीं होता। यदि उनका आसक्तिपूर्ण चिन्तन होगा तो क्या पता इस घर में चूहा होकर आना पड़े कि कुत्ता होकर आना पड़े साँप होकर आना पड़े कि चिड़िया होकर घोंसले में शब्द करने को आना पड़े.... कोई पता नहीं। अच्छा है.... पुत्र और बहुएँ गद्दार हुई तो अच्छा ही है क्योंकि तीन दिन के बाद तो जाना ही है। अब जो समय बचा है उसमें विठोबा को याद कर लूँ- विट्ठल्ला.... विट्ठल्ला... करके वह चालू हो गया।

जीवन भर जो मंदिर नहीं गया, जो संतों को भी नहीं मानता था वह सेठ तेरा-मेरा भूलकर 'विट्ठल्ला......विट्ठल्ला....' रटने में मगन हो गया।

छठा दिन बीता। ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों सेठ में भक्तिभाव, स्वाभिवकता, सहनशक्ति आदि सदगुण स्वतः ही विकसित होने लगे। परिजन भी विस्मित हैं कि इनका जीवन इतना परिवर्तित ! हम तो रोज मनौति मानते थे कि 'कब मरेगा? कब जान छूटेगी? हे देवी-देवता ! इसका स्वर्गवास हो जाय तो हम भंडारा करेंगे?'

जिन बच्चों को तुम रिश्वत लेकर, अपना पेट काटकर पाल-पोसकर, पढ़ा-लिखाकर बड़ा करते हो, उन्हें मिसेज (बहू) मिलने दो और तुम्हारा बुढ़ापा आने दो, फिर देखो कि क्या होता है....

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, वे भी गये निराश।।

चार-चार पुत्र होने पर भी बूढ़ा परेशान है क्योंकि बूढ़े ने पुत्रों पर आधार रखा है, परमात्मा पर नहीं। तुमने परमात्मा का आधार छोड़कर पुत्र पर, पैसे पर, राज्य पर, सत्ता पर आधार रखा है तो अंत में रोना ही पड़ेगा।

विश्व की सारी सुविधाएँ जिसके पास थीं ऐसी इंदिरा को भी बेचारी को विवश होकर अपने पुत्र की अकाल मौत की हालत देखनी पड़ी थी। मौत कहाँ आती है, कब आती है, कैसे आती है, कोई पता-ठिकाना नहीं। कई-कई दृष्टांत अपने सामने हैं जिनमें सामूहिक मौते हुईं.... मोरबी कांड, भोपाल गैस कांड, मराठावाड़ा का भूकम्प कांड.... जिनमें हजारों आदमी देखते-देखते चल बसे।

हमारा भी क्या ठिकाना कि यहाँ से घर पहुँच भी न पाएँ और रास्ते में कुछ हो जाए... दुकान से घर जाएँ और रास्ते में ही खत्म हो जाएँ.... क्या पता? इस नश्वर शरीर का कोई पता नहीं, भैया !

सेठ का अब छठा दिन पूरा हो गया है। वह बड़ा उत्सुक हो रहा है किः 'भगवान मैं क्या करूँ? मेरे कर्म कैसे कटेंगे? विट्ठल्ला...... विट्ठल्ला....' धुन चालू है।

छठे दिन की रात्रि आखिरी रात्रि है। रात्रि को नींद नहीं आई। रविदास की बात याद आ गई होगी शायद उसे। अनजाने में रविदास उसके जीवन में चमका होगाः

रविदास रात न सोइये, दिवस न लीजिये स्वाद।
निशदिन हरि को सुमरिये, छोड़ि सकल प्रतिवाद।।

उस सेठ की रात अब सोने में नहीं जाती, सत्य में जा रही है। 'विट्ठल्ला... विट्ठल्ला.... विट्ठल्ला.....' करते-करते प्रभात हुई। कुटुम्बियों को जगाया और कहाः

"मुझमें अभी तक जो भी गलतियाँ हुई हों या मैंने किसी को कुछ गलत भी बोला हो तो मुझे माफ कर देना। मैं अब जा रहा हूँ।"

कुटुम्बी रो रहे हैं किः "अब तो तुम बहुत अच्छे हो गये हो। तुम न जाते तो अच्छा है।"

जो भगवान को प्यारा होता है वह कुटुम्ब का भी प्यारा होता है और समाज का भी प्यारा होता है लेकिन जो भगवान को विस्मृत करके केवल कुटुम्बियों के लिये ही जुटा रहता है उसे कुटुम्बी भी बाद में गद्दारी से देखते हैं।

अब सेठ के लिए लोगों को जिज्ञासा हो रही है कि ये क्या कर रहे हैं !

सेठ बोल रहे हैं- "चौका लगाओ, तुलसी के पत्ते मेरे मुँह में डालो। तुलसी का एकाध मनका गले में डालकर मरूँ तो ठीक है, कम से कम नरक और यमदूतों से तो बचूँगा।"

तुलसी के पत्ते लाये जा रहे हैं। एकाध तुलसी का मनका भी तलाशा जा रहा है।

सेठ को अब खटिया से उतारकर लिपे-पुते चौके में लिटा दिया गया है। बस, अब कौन सी घड़ी मौत आएगी... क्या पता?

प्रभात से सातवाँ दिन शुरू हो रहा है। सेठ कहता है परिजनों सेः "आप रोना मत। मुझे मरने देना विठोबा के चिंतन में।"

कुटुम्बी परेशान हैं। इतने में एकनाथजी महाराज उधर से निकले। कुटुम्बियों ने पैर पकड़ लियेः "गुरूजी! आपका चेला है, भक्त है। हम भी आपको पूजते हैं, कृपया पधारिये।"

एकनाथ जी आये और सेठ को देखकर बोलेः "क्यों इस तरह चौके में लेटे हो? क्या बात है?"

वह बोलाः "गुरूजी ! आप ही ने तो कहा था कि 'सात दिन में तुम्हारी मौत है। एक सप्ताह में तुम मरोगे।' तो छः दिन तो मैं जी लिया और आज आखिरी दिन है। संत का वचन कभी मिथ्या नहीं होता।

एकनाथ जी कहते हैं- "हाँ, मैंने कहा था कि एक सप्ताह में ही मरोगे तुम।"

मैं भी तुम्हें कह देता हूँ कि तुम भी एक सप्ताह में ही मरने वाले हो। आपकी मौत का दिन सोमवार होगा या मंगलवार, मंगल नहीं तो बुध, बुध नहीं तो गुरू, गुरू नहीं तो शुक्र.... शनि... रवि.... इन सात दिनों के भीतर ही तो तुम मरोगे, इससे अलग किसी नये दिन में तुम थोड़े ही मरने वाले हो। ॐ..... ॐ..... ॐ.....

एकनाथ जी ने उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए गुप्त संकेत कर दिया था कि तुम एक सप्ताह के अन्दर ही अन्दर मरोगे। बात तो सच्ची थी। संत झूठ क्यों बोलेंगे? हम उनके वचनों के गूढ़ रहस्यों को अपनी मंदमति से जान नहीं पाते इसीलिए हम उल्टा संतों को ही झूठा साबित कर देते हैं?

एक आदमी आया और कहने लगाः बाबा जी ! मैं फलाने अपराध में फँस गया हूँ।" बाबा जी बोलेः "तू चिन्ता मत कर। मुक्त हो जाएगा।" और वह छूट गया अदालत से। फिर गया बाबाजी के पासः "बाबाजी ! आपने कहा था तो मैं मुक्त तो हो गया लेकिन दस रूपये का जुर्माना देना पड़ा।"

अरे, जुर्माना देकर भी तू मुक्त तो हो गया, फिर भले कैसे भी मुक्त हुआ। हमने तो सिर्फ इतना कहा था कि तू मुक्त हो जायेगा। तेरी जब श्रद्धा बड़ी है तो इस जुर्माने से क्या, मौत के जुर्माने से भी तू मुक्त हो जायेगा। तू डरता क्यों है....?

शेर की दाढ़ में आया हुआ शिकार क्वचित् छटक सकता है लेकिन सच्चे सदगुरूओं के हृदय में जिसका स्थान आ जाए वह कैसे छटक सकता है? संसार में वह कैसे भटक सकता है? वह मुक्त होगा ही।

'एकनाथ जी ने कहा थाः 'सात दिन में तेरी मृत्यु है।' एकनाथ जी के वचन उसने सत्य माने इसलिए जीवन में परिवर्तन हो गया।

एकनाथ जी कहते हैं- "भाई ! तुमने पूछा था न कि मुझमें व तुममें क्या फर्क है ? तुम ऐसे महान् और मैं सामान्य क्यो ? तुम इतने पवित्र और मैं ऐसा पापी क्यों? तो मैंने तुम्हें बताया था कि सात दिन में तुम्हारी मौत होगी।

तुमने मौत को सात दिन ही दूर समझा था। अब बताओ, मेरी उस मुलाकात के बाद, सात दिन में होने वाली मौत के बारे में सुनने के बाद, तुमने कितनी बार शराब पी ?"

वह बोलाः "एकबार भी नहीं, छुआ तक नहीं।"

"माँस कितना खाया?"

"बिल्कुल नहीं खाया। विट्ठल्ला का नाम ही जपता रहा, और कुछ भी नहीं किया मैंने।"

"कितनी बार झगड़ा किया?"

"नहीं, झगड़ा-वगड़ा मुझे कुछ याद ही नहीं रहा सिवाय तीन दिन..... दो दिन... एक दिन..... मैं भला किससे झगड़ा करता ? मैं अब केवल तुम्हारी शरण में हूँ।" ऐसा कहकर 'विट्ठल्ला..... विट्ठल्ला' करते हुए वह एकनाथ जी के चरणों में पड़ा।"

एकनाथ जी कहते हैं- "चलो ठीक है। अब एक बात समझ लो। तुमको छः दिन, पाँच दिन, चार दिन, तीन दिन मौत दूर दिखी, जितनी-जितनी मौत नजदीक आती गई, तुम उतने अधिक ईश्वरमय होते गये और संसार फीका होता गया। यह तुम्हारा अपना अनुभव है कि दूसरे किसी का ?"

वह कहता हैः "सब मेरा अनुभव है गुरूजी ! कुछ रस नहीं दिखता, संसार में कहीं कोई रस नहीं है।"

एकनाथ जीः "तुझे अब यह पता चला कि तेरी मौत केवल सात दिन दूर है तो तुझे कहीं रस नहीं दिखता लेकिन मेरे गुरूदेव ने तो मुझे अपने सामने ही मौत दिखा दी है। मैं रोज मौत को याद करता हूँ, इसलिए मुझे संसार में आसक्ति नहीं और प्रभु में प्रीति है। प्रभु में जिसकी प्रीति है उसके साथ दुनियादार प्रीति करते हैं, इसलिए मैं बड़ा दिखता हूँ और तुम छोटे दिखते हो, वरना तुम और मैं दोनों एक ही तो है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मान्मवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।
बन्धुरात्मात्मस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

'अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है।'

(गीताः 6.5,6)

यदि अनात्म वस्तुओं में चित्त लगाया, अनात्म पदार्थों में मन लगाया तो आप अपने आपके शत्रु हो जाते हैं और छोटे हो जाते हैं लेकिन अनात्म वस्तुओं से मन को हटाकर यदि आत्मा में लगाते हैं तो आप श्रेष्ठ हो जाते हैं। आप अपने आपके मित्र हो जाते हैं और बड़े हो जाते हैं।

नानक तुमसे बड़े नहीं थे, कबीर तुमसे बड़े नहीं थे, महावीर तुमसे बड़े नहीं थे, बुद्ध तुमसे बड़े नहीं थे, क्राईस्ट तुमसे बड़े नहीं थे, श्रीकृष्ण भी तुमसे बड़े नहीं थे अपितु तुम्हारा ही रूप थे लेकिन वे सब इसलिए बड़े हो गये कि उन्होंने अपने आप में स्थिति की और हम लोग पराये में स्थिति करते हैं। इसलिये हम मारे गये और वे लोग तर गये। बस, इतना ही फर्क है। जो हो गया सो हो गया, समय बीत गया सो बीत गया लेकिन अब बात समझ में आ गई तो आप याद रखना कि सात दिन में ही आपको भी मरना है। उस सेठ को तो सचमुच एकनाथ जी ने रहस्य खोलकर नहीं बताया इस कारण उसका कल्याण हुआ। मैंने तो तुम्हें इसलिए रहस्य खोलकर बताया कि तुम समझदार हो। इस रहस्य को समझते हुए भी तुम सात दिन में मौत को याद रखोगे तो कल्याण हो जाएगा।....और सच बोलता हूँ कि सात दिन के अन्दर ही अन्दर मौत होने वाली है। उस मौत को सामने रखना कि आखिर कब तक....?

कल रविवार है.... छुट्टी मनाएँगे..... खेलेंगे......घूमेंगे... लेकिन एक रविवार ऐसा भी हो तो हो सकता है जिस दिन हमें अर्थी पर सवार होकर जाना पड़े। सोमवार को हम किसी मित्र से मिलने को जा रहे हैं..... हो सकता है कि कोई ऐसा सोमवार हो कि हमें शमशान में ही जाना पड़े।

मंगल को हम इससे मिलेंगे, उससे मिलेंगे.... हो सकता है कोई मंगल ऐसा भी आएगा कि हम अर्थी से मिलेंगे। बुध को हम यह करेंगे..... वह करेंगे..... हो सकता है बुध को बुद्धू की नाई हमारा शव पड़ा हो।

गुरूवार को हम यह करेंगे..... वह करेंगे.... ऐसा करेंगे..... लेकिन क्या पता गुरू को हम गुरू के द्वार जाते हैं कि यम के द्वार जाते हैं, कोई पता नहीं। हाँ, शुक्र को हम यह करेंगे......। अरे ! शुक्र को शुक्रचार्य जैसे ज्ञान को पाते हैं कि शूकर जैसी योनियों की तरफ जाते हैं, कोई पता नहीं।

शनिवार को भी वहीः यह करेंगे..... वह करेंगे..... अरे, उस मौत को भूलो मत। सुबह उठो तो परमात्मा और मौत को याद करो कि क्या पता कौन-से दिन चले जाएँगे। आज सोमवार है तो क्या पता इस देह का अंत किस सोमवार को हो जाए। आज मंगल है तो क्या पता किस मंगल को चले जाएँ।

आप तो चतुर हैं, समझदार हैं इसलिए मौत और परमात्मा दोनों को सामने रखोगे तो फिर महान् होने में देर नहीं होगी। मौत और परमात्मा को सामने रखोगे तो अपने गाँव का साईन बोर्ड देखने में भी जरा उत्साह होगा। अपने गाँव के नाम का बोर्ड आ जाए तो फिर तुम सीधे चले ही जाना, पूछने मत लग जाना कि 'मेरा गाँव है या तेरा गाँव? तुम तो चले ही जाना अपने गाँव में।

अमुक भाई गया है कि नहीं? उसका इंतजार मत करना।

कई लोग आश्चर्यजनक बातें करता हैं। उस परमात्मा के वातावरण में बैठते ही उनका चित्त शांत हो जाता है। चित्त जब शांत होता है तो खुली आँखों से भी आनन्द आने लगता है और जब चित्त ही शांत नहीं तो बन्द आँखों से भी कुछ नहीं होता है।

जब-जब तुम्हें आनन्द आने लग जाय तो समझना है कि अनजाने में चित्त शांत हो गया है। तुम्हारे परिश्रम के बिना, वातावरण की कृपा से, भगवान की, संतों की करुणा-कृपा से तुम्हारा मन अनजाने में ही ध्यानस्थ हो जाता है, धारणा में आ जाता है, तभी तुम्हें आनन्द आता है।

कई लोग अजीब किस्म के होते हैं जो कहते हैं-

"साँईं ! मुझ पर दया कर दो।"

मैंने पूछाः "क्या बात है?"

"मेरा ध्यान नहीं लगता, दया कर दो।" जबकि चेहरा खबर दे रहा था कि अमृत पिया है, एकाध घूँट झेल लिया है।

मैंने फिर पूछाः "क्या होता है?"

"आनन्द तो बहुत आता है।"

"आनन्द तो बहुत आता है और ध्यान नहीं लगता? अरे, बड़े मियां ! ध्यान का फल क्या है? आनंद है कि दुःख? ध्यान का फल क्या है? ईश्वर प्राप्ति का फल क्या है?"

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

भगवान कहते हैं - मेरे दर्शन का फल अनुपम है, वह यह कि जीव अपना स्वरूप पा ले, अपने सहज सुखस्वरूप की उसे अनुभूति होने लगे।

सुखस्वरूप की झलकें आने लगे इस हेतु यह जरूरी नहीं है कि गुरू दीक्षा लेंगे, गुरूजी फूँक मारेंगे, सिर पर हाथ रखेंगे और हम नारियल देंगे, पैसे देंगे, फिर गुरू अपना ब्रह्मज्ञान देंगे या अपनी करूणा कृपा देंगे। यह तो पंडित गुरू का काम है, भैया !

सदगुरू तो बिना लिये ही दे देते हैं। ढूँढते रहते हैं कि कोई मिल जाए पाने वाला। विधि-विधान बने, हम शिष्य बनें, तभी वे कुछ देंगे, ऐसी बात नहीं। वे पहले ऐसे ही करूणा-कृपा बरसा देते हैं, बाद में हमारी श्रद्धा होती है तो हम उन्हें गुरू मानते हैं अन्यथा उन्हें तो गुरू मनवाने की इच्छा नहीं होती क्योंकि वे तो गुरूओं के भी गुरू हैं, विश्वात्मा हैं। वे कोई दो, चार, दस, बीस, पचास आदमियों के गुरू नहीं हैं अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के गुरू हैं। जिन्होंने जगत के पदार्थों की आस भीतर से छोड़ रखी है, वे तो सारे जगत के गुरू हैं, फिर चाहे हम उन्हें मानें या न मानें। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।

कबीरा जोगी जगत गुरू, तजै जगत की आस।
जो जग की आशा करे, जग गुरू वह दास।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सदगुरू-महिमा

जिनके जीवन में आत्मशांति प्राप्त करने की रूचि व तत्परता है, वे इस पृथ्वी के देव ही हैं। देव दो प्रकार के माने जाते हैं- एक तो स्वर्ग में रहने वाले और दूसरे धरती पर के देव। इनमें भी धरती पर के देव को श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि स्वर्ग के देव तो स्वर्ग के भोग भोगकर अपना पुण्य नष्ट कर रहे हैं जबकि पृथ्वी के देव अपने दान, पुण्य, सेवा, सुमिरन आदि के माध्यम से पाप नष्ट करते हुए हृदयामृत का पान करते हैं। सच्चे सत्संगी मनुष्य को पृथ्वी पर का देव कहा जाता है।

कबीर जी के पास ईश्वर का आदेश आया कि तुम वैकुण्ठ में पधारो। कबीर जी की आँखों में आँसू आ गये। इसलिए नहीं कि अब जाना पड़ता है, मरना पड़ता है.... बल्कि इसलिए कि वहाँ सत्संग नहीं मिलेगा। कबीर जी लिखते हैं-

राम परवाना भेजिया, वाँचत कबीरा रोय।
क्या करूँ तेरी वैकुण्ठ को, जहाँ साध-संगत नहीं होय।।

ईश्वर का साकार दर्शन करने के बाद मोह हो सकता है, काम, क्रोध, कपट, बेईमानी रह सकती है। कैकेयी, मंथरा, शूर्पणखा, दुर्योधन, शकुनि आदि ईश्वर का दर्शन करते थे फिर भी उनमें दुर्गुण मौजूद थे क्योंकि भगवान का दर्शन आत्मरूप से कराने वाले सदगुरूओं का संग उन्होंने नहीं किया।

शरीर की आँखों से भले ही कितना भी दर्शन करो, लेकिन जब तक ज्ञान की आँख नहीं खुलती तब तक आदमी थपेड़े खाता ही रहता है। दर्शन तो अर्जुन ने भी किये थे श्री कृष्ण के, परंतु जब श्रीकृष्ण ने उपदेश देकर कृष्ण तत्त्व का दर्शन कराया तब अर्जुन कहता हैः

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितिऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

'हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गई है। मैं सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

(गीताः 18.73)

शिवजी का दर्शन हो जाय, राम जी का हो जाय या श्री कृष्ण का हो जाय लेकिन जब तक सदगुरू आत्मा-परमात्मा का दर्शन नहीं कराते तब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, पाखंड और अहंकार रह सकता है। सदगुरू के तत्त्वज्ञान को पाये बिना इस जीव की, बेचारे की साधना अधूरी ही रह जाती है। तब तक वह मन के ही जगत् में ही रहता है और मन कभी खुश तो कभी नाराज। कभी मन में मजा आया तो कभी नहीं आया। इसलिये कबीर जी ने कहा हैः

भटक मूँआ भेदू बिना पावे कौन उपाय।
खोजत-खोजत जुग गये, पाव कोस घर आय।।

यह जीव चाहता है तो शांति, मुक्ति और अपने नाथ से मिलना। मृत्यु आकर शरीर छीन ले और जीव अनाथ होकर मर जाय उसके पहले अपने नाथ से मिलना चाहिए, परंतु मन भटका देता है बाहर की, संसार की वासनाओं में। कोई-कोई भाग्यशाली होते हैं वे ही दान-पुण्य करना समझ पाते होंगे। उनसे कोई ऊँचा होता होगा वह सत्संग में आता है और उनसे भी ऊँचाई पर जब कोई बढ़ता है तब वह सत्यस्वरूप आत्मा परमात्मा में पहुँचता, उसे परम शांति मिलती है, जिस परम शांति के आगे, इन्द्र का वैभव भी कुछ नहीं।

आपूर्यमाणचलं प्रतिष्ठं, समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

'जैसे जल द्वारा परिपूर्ण समुद्र में सम्पूर्ण नदियों का जल चारों ओर से आकर मिलता है पर समुद्र अपनी मर्यादा में अचल प्रतिष्ठित रहता है, ऐसे ही सम्पूर्ण भोग-पदार्थ जिस संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न किये बिना ही उसको प्राप्त होते हैं, वही मनुष्य परम शांति को प्राप्त होता है, भोगों की कामना वाला नहीं।'

(गीताः 2.70)

जैसे समुद्र में सारी नदियाँ चली जाती हैं फिर भी समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, सबको समा लेता है, ऐसे ही उस निर्वासनिक पुरूष के पास सब कुछ आ जाय फिर भी वह परम शांति में निमग्न पुरूष ज्यों का त्यों रहता है। ऐसी अवस्था का ध्यान कर अगर साधन-भजन किया जाय तो मनुष्य शीघ्र ही अपनी उस मंजिल पर पहुँच ही जाता है।

निम्न तीन बातें सब लोगों को अपने जीवन में लानी ही चाहिए। ये तीन बातें जो नहीं जानता वह मनुष्य के वेश में पशु ही हैः

पहली बातः मृत्यु कभी भी, कहीं भी हो सकती है, यह बात पक्की मानना चाहिए।

दूसरी बातः बीता हुआ समय पुनः लौटता नहीं है। अतः सत्यस्वरूप ईश्वर को पाने के लिए समय का सदुपयोग करो।

तीसरी बातः अपना लक्ष्य परम शांति यानि परमात्मा होना चाहिए।

यदि आप लक्ष्य बना कर नहीं आते तो क्या सत्संग में पहुँच पाते? अतः पहले लक्ष्य बनाना पड़ता है फिर यात्रा शुरू होती है। भगवान की भक्ति का उच्च लक्ष्य बनाते नहीं है इसलिये हम वर्षों तक भटकते-भटकते अंत में कंगले के कंगले ही रह जाते हैं।

आप पूछेंगेः "महाराज ! कंगले क्यों? भक्ति की तो धन मिला, यश मिला।"

भैया ! यह तो मिला लेकिन मरे तो कंगले ही रह गये। सच्चा धन तो परमात्मा की प्राप्ति है। यह तो बाहर का धन है जो यहीं पड़ा रह जायेगा। इस शरीर को भी कितना ही खिलाओ-पिलाओ, यह भी यहीं रह जायेगा। सच्चा धन तो आत्मधन है। कबीर जी ने ठीक ही कहा हैः

कबीरा यह जग निर्धना, धनवंता नहीं कोई।

धनवंता तेहुँ जानिये, जाको राम नाम धन होई।।

जिसके जीवन में रोम-रोम में रमने वाला परम शांति परम सुख व आनंदस्वरूप रामनाम का धन नहीं है वह धनवान होते हुए भी कंगाल ही तो है।

मनुष्य में इतनी सम्भावनाएँ हैं कि वह भगवान का भी माता-पिता बन सकता है। दशरथ-कौशल्या ने भगवान राम को जन्म दिया और देवकी-वसुदेव भगवान श्रीकृष्ण के माता-पिता बने। मनुष्य में इतनी सम्भावनाएँ हैं लेकिन यदि वह सदगुरू के चरणों में नहीं जाता और सूक्ष्म साधना में रूचि नहीं रखता तो मनुष्य भटकता रहता है।

आज भोगी भोग में भटक रहा है, त्यागी त्याग में भटक रहा है और भक्त बेचारा भावनाओं में भटक रहा है। हालाँकि भोगी से और त्याग के अहंकारी से तो भक्त अच्छा है लेकिन वह भी बेचारा भटक रहा है। इसीलिए नानकजी ने कहाः

संत जना मिल हर जस गाइये।

उच्च कोटि के महापुरूषों के चरणों में बैठकर हरिगुण गाओ, उनसे मार्गदर्शन लेकर चलो। कबीर जी ने कहा हैः

सहजो कारज संसार को, गुरू बिना होत नाहीं।
हरि तो गुरू बिन क्या मिले, समझ ले मन मांहीं।।

संसार का छोटे-से-छोटा कार्य भी सीखने के लिए कोई न कोई तो गुरू चाहिए और फिर बात अगर जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार करने की आती है तो उसमें सदगुरू की आवश्यकता क्यों न होगी भैया ?

मेरे आश्रम में एक महंत रहता है। मुझे एक बार सत्संग के लिए कहीं जाना था। मैंने उस महंत से कहाः "रोटी तुम अपने हाथों से बना लेना, आटा-सामान यहाँ पड़ा है।"

उसने कहाः "ठीक है।"

वह पहले एक सेठ था, बाद में महंत बन गया। तीन दिन के बाद जब मैं कथा करके लौटा तो महंत से पूछाः "कैसा रहा? भोजन बनाया था कि नहीं?"

महंतः "आटा भी खत्म और रोटी एक भी नहीं खाई।"

मैंने पूछाः "क्यों, क्या हुआ?"

महंतः "एक दिन आटा थाल में लिया और पानी डाला तो रबड़ा हो गया। फिर सोचाः थोड़ा-थोड़ा पानी डालकर बनाऊँ तो बने ही नहीं। फिर सोचाः वैसे भी रोटी बनाते हैं तो आटा ही सिकता है तो क्यों न तपेली में डालकर जरा हलवा बना लें ? हलवा बनाने गया तो आटे में गाँठें ही गाँठें हो गई तो गाय को दे दिया। फिर सोचाः चलो मालपूआ जैसा कुछ बनावें लेकिन स्वामी जी ! कुछ जमा ही नहीं। आटा सब खत्म हो गया और रोटी का एक ग्रास भी नहीं खा पाया।"

जब आटा गूँथने और सब्जी बनाने के लिए भी बेटी को, बहू को किसी न किसी से सीखना पड़ता है तो जीवात्मा का भी यदि परमात्मा का साक्षात्कार करना है तो अवश्य ही सदगुरू से सीखना ही पड़ेगा।

गुरू बिन भवनिधि तरहिं न कोई।
चाहे विरंचि संकर सम होई।।

गुरू की कृपा के बिना तो भवसागर से नहीं तरा जा सकता। ऐसे महापुरूषों को पाने के लिए भगवान से मन ही मन बातचीत करो किः "प्रभु ! जिंदगी बीती जा रही है, अब तो तेरी भक्ति, तेरा ध्यान और परम शांति का प्रसाद लुटाने वाले किसी सदगुरू की कृपा का दीदार करा दे।"

दुनिया भर की बातें तो तुमने बहुत सुनी, लाला ! बहुत कही.... बहुत कहोगे.... लेकिन अंत में उससे कुछ न मिलेगा, रोते रह जाओगे.... इसलिए कभी कभी उस दुनिया के स्वामी के साथ बातचीत किया करो। कभी रोना नहीं आता है तो इस बात पर रोओ कि पैसों के लिए रोता है, वाह-वाही के लिए रोता है, लेकिन ऐ मेरे पापी मन ! परमात्मा के लिए तुझे रोना ही नहीं आता ? कभी उसको प्यार करते-करते हँसो, फिर देखो कि धीरे-धीरे कैसे तुम्हारी चेतना जागृत होती है। कोई सच्चे सदगुरू ब्रह्मवेत्ता मिल जाएँगे और उनकी सम्प्रेक्षण शक्ति का यदि थोड़ा सा अंश भी मिल गया तो आप लोग जिस तरह यहाँ शिविरों में सहज ही ध्यानमग्न हो जाते हो, ऐसा अनुभव आप अपने घर में भी पूजनकक्ष में कर सकते हो।

आप जितनी अधिक अन्तरंग साधना उपासना करेंगे, अन्दर के देवता का दर्शन करने जाएँगे, उतनी ही आपकी पर्तें हटती जाएँगी। बाहर के देव के दर्शन करने में तो तुम्हें लाईन लगानी पड़ेगी, पर्ची कटवाने पर भी चाहे दर्शन हो या न हो लेकिन इस अंदर के देव के दर्शन एक बार ठीक से हो गये तो फिर बाहर के देव के दर्शन तुमने नहीं किये तो भी चिन्ता की बात नहीं। तुम जहाँ भी हो, वहाँ देव ही देव है।

उस परमात्मा की कृपा पाने के लिए आप छटपटाओ, कभी यत्न करो। जिन्दगी का इतना समय बीता चला जा रहा है, अब कुछ ही शेष बचा है...... डेढ़ साल..... दो साल..... पाँच.... दस..... बीस या तीस साल और अंत में क्या....? यह जीवन बहती गंगा की तरह बह रहा है। उसमें से अपना समय बचाकर काम कर लो भैया.....!

उस सत्यस्वरूप का संग करो। सुबह नींद से उठते ही संकल्प करोः "प्रभु ! तेरा संग कैसे हो?" कभी व्यवहार करते-करते बार-बार सोचो किः "ऐ मेरे परमात्मा ! तू मेरे साथ है लेकिन मैं अभी तक तेरा संग नहीं कर रहा हूँ और मिटने वाली चीजों और मरने वाले दोस्तों के संग में पड़ा हूँ लेकिन हे मेरे अमिट-अमर मालिक ! तेरी दोस्ती का रंग मुझे कब लगेगा ? तू क्या कर दे प्रभु !"

अगर आपने सच्चे हृदय से ऐसी प्रार्थना की है तो वह काम कर लेगी। यदि हृदय से सच्ची प्रार्थना नहीं निकल पाती है तो कम से कम ऐसे-वैसे ही प्रार्थना करो, धीरे-धीरे वह भी सच्ची बन जाएगी।

हल्की कामनाओं को निकालने के लिए अच्छी कामना करनी चाहिए। जैसे काँटे से काँटा निकलता है, वैसे ही हल्की वासना और हल्के कर्मों से अपने दिल को पवित्र करने के लिए अपने दिल को अच्छे कर्म में लगा दो। हल्की आदतें दूर करने के लिए अच्छी आदतें, देवदर्शन की आदतें डाल दो, अच्छा है। संसार आँखों और कानों से भीतर प्रवेश कर अशांति पैदा करता है, इसकी अपेक्षा भगवान के श्रीविग्रह को देखकर उसी को भीतर प्रवेश कराओ, अच्छा है। भगवान के प्यारे संतों के वचन सुनकर उनका चिंतन-मनन करो तो जैसे काँटे से काँटा निकलता है ऐसे ही सत्संग से कुसंग निकलता है। सुदर्शन से कुदर्शन का आकर्षण निवृत्त होता है। यदि कुदर्शन हट गया तो सुदर्शन तुम्हारा स्वभाव हो जाएगा।

भगवान के दर्शन से मोह हो सकता है लेकिन भगवान के सत्संग से मोह दूर होता है। दर्शन से भी सत्संग ऊँचा है। सत्संग मनुष्य को सत्यस्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित कर शांतस्वरूप परमात्मा का अनुभव कराता है।

अन्तर्आराम अन्तर्सुख अन्तर्ज्योतिरेव च।

सत्संग आन्तरिक आराम, आंतरिक सुख व आंतरिक ज्ञान की ज्योति जगाता है। दीपक की ज्योति गर्म होती है जो वस्तुओं को जलाती है लेकिन भीतर के ज्ञान की ज्योति जब सदगुरू प्रज्वलित कर देते हैं तो वह वस्तुओं को नहीं वरन् पाप ताप को जलाकर अज्ञान और आवरण को मिटाकर जीवन में प्रकाश लाती है, शांति और माधुर्य ले आती है।

जिनके हृदय में वह अचल शांति प्रगट हुई है उनकी आँखों में जगमगाता आनन्द, संतप्त हृदयों को शांति देने का सामर्थ्य, अज्ञान में उलझे हुए जीवों को आत्मज्ञान देने की उनकी शैली अपने-आप में अद्वितीय होती है।

ऐसे पुरूष संसार में जीते हुए लाखों लोगों का अन्तःकरण भगवदाकार बना देते हैं। आप भी ऐसा करने में सक्षम हो सकते हैं बशर्ते आप सत्संग के सहारे दिलमंदिर में जाने का प्रयास करें तो। आपके जीवन में कोई सुखद घटना घटे या दुःखद, आप अपने ही ज्ञान का सहारा लीजिये।

एक बहुत अमीर सेठ थे। एक दिन वे बैठे थे कि भागती-भागती नौकरानी उनके पास आई और कहने लगीः

"सेठ जी ! वह नौ लाख रूपयेवाला हार गुम हो गया।"

सेठ जी बोलेः "अच्छा हुआ..... भला हुआ।" उस समय सेठ जी के पास उनका रिश्तेदार बैठा था। उसने सोचाः बड़ा बेपरवाह है !

आधा घंटा बीता होगा कि नौकरानी फिर आईः

"सेठ जी ! सेठ जी ! वह हार मिल गया।"

सेठ जी कहते हैं- "अच्छा हुआ.... भला हुआ।"

वह रिश्तेदार प्रश्न करता हैः "सेठजी ! जब नौ लाख का हार चला गया तब भी आपने कहा कि 'अच्छा हुआ.... भला हुआ' और जब मिल गया तब भी आप कह रहे हैं 'अच्छा हुआ.... भला हुआ।' ऐसा क्यों?"

सेठ जीः "एक तो हार चला गया और ऊपर से क्या अपनी शांति भी चली जानी चाहिए ? नहीं। जो हुआ अच्छा हुआ, भला हुआ। एक दिन सब कुछ तो छोड़ना पड़ेगा इसलिए अभी से थोड़ा-थोड़ा छूट रहा है तो आखिर में आसानी रहेगी।"

अंत समय में एकदम में छोड़ना पड़ेगा तो बड़ी मुसीबत होगी इसलिए दान-पुण्य करो ताकि छोड़ने की आदत पड़े तो मरने के बाद इन चीजों का आकर्षण न रहे और भगवान की प्रीति मिल जाय।

दान से अनेकों लाभ होते हैं। धन तो शुद्ध होता ही है। पुण्यवृद्धि भी होती है और छोड़ने की भी आदत बन जाती है। छोड़ते-छोड़ते ऐसी आदत हो जाती है कि एक दिन जब सब कुछ छोड़ना है तो उसमें अधिक परेशानी न हो ऐसा ज्ञान मिल जाता है जो दुःखों से रक्षा करता है।

रिश्तेदार फिर पूछता हैः "लेकिन जब हार मिल गया तब आपने 'अच्छा हुआ.... भला हुआ' क्यों कहा ?"

सेठ जीः "नौकरानी खुश थी, सेठानी खुश थी, उसकी सहेलियाँ खुश थीं, इतने सारे लोग खुश हो रहे थे तो अच्छा है,..... भला है..... मैं क्यों दुःखी होऊँ? वस्तुएँ आ जाएँ या चली जाएँ लेकिन मैं अपने दिल को क्यों दुःखी करूँ ? मैं तो यह जानता हूँ कि जो भी होता है अच्छे के लिए, भले के लिए होता है।

जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा अच्छा ही है।
होगा जो अच्छा ही होगा, यह नियम सच्चा ही है।।

मेरे पास मेरे सदगुरू का ऐसा ज्ञान है, इसलिए मैं बाहर का सेठ नहीं, हृदय का भी सेठ हूँ।"

हृदय का सेठ वह आदमी माना जाता है, जो दुःख न दुःखी न हो तथा सुख में अहंकारी और लम्पट न हो। मौत आ जाए तब भी उसको अनुभव होता है कि मेरी मृत्यु नहीं। जो मरता है वह मैं नहीं और जो मैं हूँ उसकी कभी मौत नहीं होती।

मान-अपमान आ जाए तो भी वह समझता है कि ये आने जाने वाली चीजें हैं, माया की हैं, दिखावटी हैं, अस्थाई हैं। स्थाई तो केवल परमात्मा है, जो एकमात्र सत्य है, और वही मेरा आत्मा है। जिसकी समझ ऐसी है वह बड़ा सेठ है, महात्मा है, योगी है। वही बड़ा बुद्धिमान है क्योंकि उसमें ज्ञान का दीपक जगमगा रहा है।

संसार में जितने भी दुःख और जितनी परेशानियाँ हैं उन सबके मूल में बेवकूफी भरी हुई है। सत्संग से वह बेवकूफी कटती एवं हटती जाती है। एक दिन वह आदमी पूरा ज्ञानी हो जाता है। अर्जुन को जब पूर्ण ज्ञान मिला तब ही वह पूर्ण संतुष्ट हुआ। अपने जीवन में भी वही लक्ष्य होना चाहिए।

वशिष्ठजी कहते हैः "हे राम जी! सुमेरू पर्वत के शिखर तक गंगा का प्रवाह चले और फिर रूक जाए तो उसके बालू के कण तो शायद गिने जा सके लेकिन इस जीव ने कितने जन्म लिये हैं, कितनी माताओं के गर्भों से बेचारा भटका है उसकी कोई गिनती नहीं। अगर उसे सदगुरू मिल जाएँ, परमात्मा में प्रीति हो जाए और परमपद की प्राप्ति हो जाए तो यह जीव अचल शांति को, परमात्मा को पा सकता है। इस प्रकार यदि हम अपने हृदयमंदिर में पहुँचकर अन्तर्यामी ईश्वर का ज्ञान-प्राप्त कर लें तो फिर माताओं के गर्भों में भटकना नहीं पड़ता।

सुख-शांति को खोजते-खोजते युग बीत गये हैं। तुम घर से उत्साहित होकर निकलते हो कि इधर जाएँगे..... उधर जाएँगे लेकिन जब वापस लौटते हो तो थककर सोचते हो कि कब घर पहुँचे.... कब घर पहुँचे ? हो गया, बहुत हो गया.....

आदमी अपने घर से निकलता है तो बड़े उत्साह से, परंतु लौटता है तो थककर ही लौटता है। कहीं भी जाये लेकिन अन्त में घर आना ही पड़ता है। ऐसे ही जीवात्मा कितने ही शरीर में चला जाय, अंत में जब तक आत्मा-परमात्मारूपी घर में नहीं आएगा तब तक उसे पूर्ण विश्रांति प्राप्त नहीं होगी।

होटल चाहे कितनी भी बढ़िया हो, धर्मशाला में चाहे मुफ्त में रहने को मिले परंतु अपने घर तो पहुँचना ही पड़ता है। ऐसे ही शरीररूपी होटल चाहे कितनी भी बढ़िया मिल जाये अथवा शरीररूपी सराय कितनी भी सुन्दर और सुहावनी मिल जाए फिर भी इस जीवात्मा को अपने परमात्मारूपी घर में पहुँचना ही पड़ेगा। इस जन्म में पहुँचे या दस जन्म के बाद पहुँचे, दस हजार जन्म के बाद पहुँचे या दस लाख जन्म के बाद, चाहे करोड़ों जन्मों के बाद पहुँचे..... पहुँचना तो वहीं पड़ेगा। ॐ......ॐ......ॐ.......

कबीर जी रामानंद स्वामी के शिष्य होना चाहते थे। उन दिनों काशी में रामानंद स्वामी अपने राम को सर्वत्र देखनेवाले महापुरूष के रूप में विख्यात थे।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जुग पानी।।

ऐसा ज्ञान उन महापुरूष को था। ऐसे महापुरूष का शिष्य होना बड़े सौभाग्य की बात है। जिसे आत्मा-परमात्मा के एकत्व का ज्ञान है ऐसे सदगुरू की प्राप्ति सहज संभव नहीं है।

जिसके हृदय में ऐसा अनुभव प्रकट हुआ है, ऐसे महापुरूष का शिष्य होने का सौभाग्य कबीर जी चाहते थे परंतु उन दिनों जात-पाँत, छुआ-छूत का प्रभाव अधिक था। कबीर जी ने एक रात को घास-फूस की दीवार खड़ी कर उसमें दरवाजे जैसा थोड़ा-सा स्थान आने-जाने के लिये

छोड़ दिया और रात में उसी स्थान से सटकर घाट की सीढ़ी पर लेट गये। ब्रह्ममुहूर्त के समय रामानंद स्वामी लकड़ी की खड़ाऊ पहने घाट की सीढ़ियाँ उतरते हुए स्नान के लिए आने लगे। ज्यों ही उन्होंने दरवाजा पार किया उनके चरण लेटे हुए कबीर जी की छाती पर जा पड़े और रामानंद जी चौंक कर 'अरे राम.... राम....' कह बैठे।

कबीर जी को तो चरण स्पर्श भी हो गया और राम नाम की दीक्षा भी मिल गई। कबीर जी जुट गये राम-राम जपने में। मंत्र जाप से उनकी सुषुप्त शक्तियाँ जागृत हुई और कबीर जी की वाणी माधुर्ययुक्त प्रभावशाली होकर ज्ञान से प्रकाशित हो गई। होना भी थी क्योंकि सिद्ध पुरूष द्वारा प्रदत्त मंत्र का जप कबीर जी ने लोभ व विकार छोड़कर किया था।

कबीर जी की वाणी सुनकर कई लोग आकर्षित हुए। एक दिन उन्हें काशी के पंडितों ने घेर ही लिया किः "तू निगुरा है, उपदेश करने लायक नहीं है फिर क्यों सत्संग करता है ? हमारे पास भीड़ नहीं और तेरे पास भीड़ बनी रहती है ! हमने चार-चार वेद रटे, 48 वर्ष हो गये रटते-रटते, कौन-सा मंत्र, मंडल, ब्राह्मण व ऋषि का उल्लेख किस पृष्ठ पर है और कौन सी ऋचा कहाँ की है यह हम बता सकते हैं लेकिन हमारे पास कोई श्रोता बैठता ही नहीं। हमारी यह हालत हो रही है कि 11 लोग बोलनेवाले और मात्र 12 लोग सुनने वाले होते हैं और तू सफेद कपड़ों वाला, तानाबुनी करने वाला, बेटा-बेटीवाला, गृहस्थ आदमी और तेरे पास इतने लोग सत्संग सुनने आते हैं ! तुम निगुरे आदमी कथा बन्द करो ताकि हमारी ग्राहकी चले।"

कबीर जी कहते हैं- "मैं निगुरा नहीं हूँ, सगुरा हूँ। मेरे गुरूदेव हैं। गुरूदेव की कृपा के बिना ज्ञान भला कैसे मिल सकता है ?"

पंडितों ने पूछाः "कौन है तुम्हारे गुरू ?"

कबीरजी कहते हैं- "प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद रामानंद भगवान मेरे गुरूदेव हैं।"

पंडित लोग 'ऐसा नहीं हो सकता' कहकर रामानंद स्वामी के पास पहुँचे और कहने लगेः "गुरू महाराज ! आपने तो धर्म का नाश कर दिया। एक यवन को, कबीर जैसे फालतू आदमी को मंत्रदीक्षा दे आये !"

रामानंद जी को तो पता भी नहीं था। वह तो अकस्मात एक घटना घट गई थी। रामानंद जी बोलेः "भाई ! कबीर कौन ? और कैसी दीक्षा ? हमने तो नहीं दी।"

अब तो पूरे काशी में ढिंढोरा पिट गया कि गुरू सच्चा कि चेला सच्चा ?

रामानंदजी ने कहाः "बुलाओ कबीर को। मेरे आमने सामने करो।"

तिथि तय हुई। न्यायालय में जैसी व्यवस्था होती है उसी प्रकार एक कटघरा रखा गया, एक ऊँचा सिंहासन बनाया गया। काशी के मूर्धन्य विद्वान पंडित तथा तमाशबीन लोग वहाँ एकत्रित हुए। न जाने कितनी आँखे यह देखने को उत्सुक थीं कि गुरू सच्चा है या चेला ?

कबीर जी को कटघरे में खड़ा किया गया। मूर्धन्य पंडितों ने कहाः "यह जलील आदमी, जो मुसलमान है या जुलाहा यह भी पता नहीं। इसका कहना है कि मेरे गुरू रामानंद स्वामी हैं

और रामानंद जी कहते हैं कि मैंने इसे दीक्षा दी ही नहीं। अब गुरू और शिष्य आपस में ही अपने सत्य की व्याख्या करें।" कबीर जी से पूछा गयाः "तुम्हारे गुरू कौन हैं ?"

कबीर जी कहते हैं- "सामने जो सिंहासन पर विराजमान हैं, प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद रामानंद भगवान, ये ही मेरे गुरूदेव हैं।"

रामानंद जी पूछते हैं- "क्यों रे ! मैंने तुझे दीक्षा दी है ?"

कबीर जीः "जी हाँ, गुरूदेव !"

रामानंद जीः "अच्छा ! इधर तो आ तनिक।"

कबीर जी नजदीक आये तो रामानंद जी ने खड़ाऊ उठाकर उनके सिर पर तीन बार दे मारी और कहने लगेः "राम... राम....राम..... मुझे झूठा बनाता है ! कब दी मैंने तुझे दीक्षा ? राम..... राम.... राम....।" (रामानंदी संतों का स्वभाव होता है बात-बात पर राम-राम कहना।)

कबीर जी रामानंदजी के चरणों में बैठ गये और बोलेः

"गुरूदेव ! गंगा किनारे दीक्षा दी थी वह अगर झूठी है तो फिर यह तो तो सच्ची है न ? अब तो हाथ से सिर पर खड़ाऊँ पड़ रहा है और राम..... राम....वचन भी मिल रहा है। वह अगर झूठी थी, यह तो सच्ची है ? वह अगर कच्ची थी, यह तो पक्की है ?"

रामानंदजी बड़े खुश हुए। उन्होंने कहाः "पंडितो ! तुम मुझे चाहे कैसा भी मानो लेकिन कबीर मेरा ही शिष्य है और मैं इसका गुरू हूँ। तुम चाहे मेरे पास आओ, चाहे न आओ।"

सुपात्र मिला तो कुपात्र को दान दिया न दिया।
सुशिष्य मिला तो कुशिष्य को ज्ञान दिया न दिया।
सूरज उदय हुआ तो और दीया किया न किया।
कहे कवि गंग सुन शाह अकबर ! पूरन गुरू मिला, तो और को नमस्कार किया न किया।

अब मेरा कबीर का पक्का नाता हो गया है।"

कबीर पंडितों की ओर देखकर मुस्कराये। मार खाकर भी सिद्ध पुरूषों की मांत्री दीक्षा मिले तब भी बेड़ा पार हो जायेगा।

किसी जेल में एक धर्मात्मा आदमी गया और देखा कि बेचारे कैदियों को रूखी सूखी रोटी मिलती है। सदा ही ये बैंगन-आलू की सब्जी व बाजरे की ही रोटी खाते हैं। उसे दया आई तो उसने जेल में भंडारा कर दिया। कैदी बड़े खुश हुए की वाह !

कुछ दिन बाद एक दूसरा धर्मात्मा गया। उसने देखा कि इन बेचारों को गर्म पानी पीना पड़ता है। गर्मी के दिन हैं। शक्कर व बर्फ के पार्सल मँगवाकर उसने शर्बत बनवाया और सबको जी भरकर शर्बत पिलाया। कैदी बड़े खुश हुए।

सर्दियों के दिन आये। तीसरा सेठ जेल में गया और देखा कि ठंड के मारे बेचारे कैदी ठिठुरते रहते हैं। उसने किसी को स्वेटर दिया, किसी को कंबल, किसी को शाल व किसी को जुर्राब दिये। कैदी खुश होकर आशीर्वाद देने लगे।

चौथा आदमी गया जिसने न तो भंडारा किया, न शर्बत पिलाया और न कपड़े बाँटे। उसके हाथ में तो चाबी थी जेल की। उसने चाबी देकर कहाः "ताला खोलो और मुक्त हो जाओ।"

अब बताओ, पहले आदमी का भंडारा जोरदार है या दूसरे आदमी का शर्बत अथवा तीसरे आदमी के शाल-कंबल या कि चौथे आदमी की कुँजी ? मानना पड़ेगा कि कुँजी ही सबसे बढ़िया चीज है। ऐसे सदगुरू भी कुँजी देते हैं। जीवात्मा को 84 लाख जन्मों से छुट्टी करके परमात्मा से मुलाकात करा देने की कुँजी का नाम दीक्षा है।

सदगुरू मेरा सूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट।।

मनुष्य सचमुच में महान से भी महान हो सकता है क्योंकि उसका वास्तविक संबंध महान से महान अकाल पुरूष से जुड़ा है। जैसे कोई भी तरंग सड़क पर नहीं दौड़ती, पानी पर ही तरंग दौड़ती है, ऐसे ही तुम्हारा मन चैतन्य अकाल पुरूष की सत्ता से ही दौड़ता है और विचार करता है, इतने निकटस्थ हो तुम परमात्मा के।

जो आद् सत् है, युगों-युगों से सत् है, अब भी सत् है और बाद में भी सत् रहेगा। उस सत्यस्वरूप का ज्ञान देने वाले सदगुरू मिल जाएँ..... उनसे प्रेम हो जाये.... बस।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आत्मदर्शन

मनुष्य यदि अपने प्राणों को खर्च न करते हुए उन्हें बचाने का उपाय सीख जावे तो उसे अनेकानेक चमत्कारी लाभ होने लगेंगे। हमारे प्राणों का प्रवाह 12 अंगुल तक चलता है। यदि इस प्रवाह को 11 अंगुल तक ही कर दिया जाय तो प्रसन्नता, पटुता, सहजता आदि गुण प्रकट होते हैं। यदि 10 अंगुल तक उसका प्रवाह चले तो न पढ़े-लिखे शास्त्रों का रहस्य नजर मात्र से उस व्यक्ति के सामने प्रकट होने लगते हैं। वह जो बोलेगा, वह शास्त्र बन जायेगा। ऐसी योग्यताएँ जिनमें विकसित हैं, उन्हें मैं जानता हूँ। आप लोगों ने भी ऐसे व्यक्तियों को देखा ही होगा। स्कूली विद्या तो उनकी नहीं के बराबर है। तीन दर्जे या दो दर्जे तक ही पढ़े होने के बाद भी वे जब बोलते हैं तो बड़े-बड़े विद्वान उनके सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। यह मात्र साँस दो अंगुल तक नियंत्रित होने से ही हो जाता है।

तीन अंगुल तक साँस नियंत्रित हो जाए अर्थात् उसका प्रवाह 9 अंगुल तक ही चले तो कवित्व शक्ति का प्राकट्य होता है जो महामूर्ख में से महाकवि कालीदास और वालिया लुटेरे में से वाल्मीकि ऋषि का प्रादुर्भाव कर सकती है।

यही प्रवाह यदि चार अंगुल तक नियंत्रित होकर आठ अंगुल पर ही श्वासोच्छ्वास की क्रिया चले तो प्रकृति के रहस्य स्वतः खुलने लगते हैं। ऐसी-ऐसी विद्याएँ हैं भारत के पास।

कुण्डलिनी योग की विद्या भी आत्मवेत्ता महापुरूषों द्वारा आदिकाल से अपने सत्शिष्यों को प्रदान की जाती रही हैं। अपने जीवन में काम करने की शक्ति, विचार करने की शक्ति जहाँ से आती है, वह कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्त पड़ी है। उसका थोड़ा सा ही अंश हम उपयोग में ले पाते हैं। यदि उस कुण्डलिनी शक्ति को जगाने वाला कोई सदगुरू मिल जाय तो हमारा स्वास्थ्य तो सुधरेगा ही, बुरी आदतें हमें छोड़नी नहीं पड़ेंगी, छूट जाएँगी। हमें अशांति मिटाने के लिए फिर कहीं जाना नहीं पड़ेगा। उस विद्या का थोड़ा-सा प्रसाद यदि कोई सदगुरू ध्यान कराते-कराते निगाहों से बरसा दें तो भी हमारा काम बन जाय। उस निगाह को कहते हैं- नूरानी निगाह।

नूरानी नजरसां दिलबर दरवेशन निहाल करे छड्यो।

श्रीकृष्ण के पास थी यह विद्या। बंसी बजाते हुए वे तनिक सा आँखों से हँस देते तो सामने वाले के दुःख, शोक व चिन्ता गायब हो जाती थी। समर्थ योगियों में यह शक्ति निहित होती है। एक बार जो उनकी नजर में आ जाता है फिर वह चाहे शरीर से बार-बार उनसे न भी मिले लेकिन मन से बार-बार उन संत को याद किये बिना वह नहीं रह सकता है।

रामकृष्ण के पास भी थी वह विद्या। विवेकानंद आये रामकृष्ण के पासः "गुरूजी ! आप मुझ पर कृपा कीजिये।"

रामकृष्ण ने कहाः "अच्छा, चलो कमरे में।" रामकृष्ण ने हाथ पकड़े और छाती पर स्पर्श करते हुए उस विद्या को संकल्प कर दिया तो नरेन्द्र में वह शक्ति जागृत होकर इतनी अधिक विकसित हुई कि सुना है, खेतड़ी के महाराजा स्वागत करते समय रथ में से घोड़े छोड़कर स्वयं रथ में जुतकर विवेकानंद का रथ खींचते थे। उस समय कैसा वातावरण रहा होगा......।

सदगुरू की कृपा से यदि तुम्हें इस विद्या का तनिक-सा भी अंश मिल जाए तो देर सवेर आप अपने संकल्पानुसार अपनी मनचाही मंजिल पर पहुँच सकते हैं। इसे कुण्डलिनी विद्या अथवा संप्रेक्षण शक्ति विद्या कहते हैं।

नरेन्द्र को रामकृष्ण की यह विद्या मिली तो नरेन्द्र इसी में लगे रहे। और कोई होता तो नौकरी धंधे में लग जाता लेकिन नरेन्द्र उसी में लगे रहे और उस विद्या की वृद्धि का ही यह चमत्कार है कि खेतड़ी के महाराजा अपने हाथों से गुरू महाराज का स्वागत करते हैं।

यह विद्या कहीं पढ़ाई नहीं जाती है। बात-बात में, आँख के पलकारे में, वह दाता सहज ही दे डालता है और लेने वाले को पता भी नहीं चलता। ऐसी है यह विद्या।

यह विद्या उतनी ही अधिक पनपती है जितनी किसी सत्पात्र को प्राप्त होती है और कुपात्र को तो मिलते ही बिखर जाती है। महापुरूष देते तो सबको खुलेआम हैं लेकिन सत्पात्र के पास टिकती है और कुपात्र से बिखेर देता है, ठीक उसी तरह जैसे कि स्वाति नक्षत्र की बूँद सीप में पड़ती है तो मोती बन जाती है और डामर की काली सड़क पर पड़ती है तो बिखर जाती है। फिर

भी डीजल-गोबर के दाग धोती हुई वह सड़क को एकदम साफ कर देती है। ऐसा ही गुरूदेव की कृपा का भी है। सत्पात्र पर गुरूकृपा बरसेगी तो उसे ही हीरा बना देगी लेकिन कुपात्र पर भी वह कृपादृष्टि पड़ती है तो उसके सारे पाप-ताप धुल जाते हैं तथा उसके हृदय में भी शांति और आनंद की झलकें आने लगती हैं। ऐसी है यह आत्मविद्या। योग शास्त्र में ऐसी कई विद्या-प्रतिविद्याएँ होती हैं.....

ज्ञानेश्वर महाराज आत्मविद्या में निपुण थे और चाँगदेव लौकिक विद्या पढ़कर योगविद्या सीखे। फिर उन्होंने ध्यान लगाकर देखा कि इस समय धरती पर ऐसा कौन ब्रह्मज्ञानी संत है जो मुझे आत्मविद्या का दान दे सके। आत्मविद्या का दान देने वाला महापुरूष कभी-कभी, कहीं-कहीं पर ही होते हैं। कभी-कभी तो सैंकड़ों वर्ष बीत जाते हैं फिर भी समाज में वे महापुरूष नहीं मिल पाते हैं।

चाँगदेव योगबल से देखते कि धरती पर वे महापुरूष अभी भी हैं कि नहीं, जिनसे मुझे ब्रह्मविद्या मिलने वाली है। यदि चाँगदेव को ऐसा कोई महापुरूष नजर नहीं आता तो वे अपनी आयु 'रिन्यू' करवा लेते। ऐसा करते-करते वे 1400 वर्ष जिये। फिर ज्ञानेश्वर महाराज अवतरित हुए। ज्ञानेश्वर महाराज जब 22 वर्ष के हुए तब चाँगदेव महाराज 1400 वर्ष के थे।

चाँगदेव ने अपने संकल्पशक्ति से, वशीकरण विद्या के बल से शेर के ऊपर संकल्प कर दियाः "वश में हो जा" तो वह वश में हो गया। वे बैठ गये शेर पर और विषधर को पकड़ कर उसका चाबुक बनाया। वह विषधर है, जहररूपी अंगार उगल रहा है फिर भी उनके आगे वह विषधर पला हुआ सा है। यह प्राणशक्ति का प्रभाव है।

प्राणशक्ति नियंत्रित हो तो देव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर हाथ जोड़कर आपके आगे खड़े हो सकते हैं, यह ऐसी विद्या है। कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाए और मनुष्य इसमें लगा तो सृष्टि में ऐसी कोई चीज नहीं है जो उस योगी को अप्राप्य हो। वह लाखों मील दूर अपने भक्त को मदद कर सकता है। अपने शिष्य की रक्षा कर सकता है। दूरदर्शन, दूरश्रवण उसका सहज साध्य हो जाते हैं। प्रकृति के रहस्य उसके समक्ष खुले होने लगते हैं। जिसको कुण्डलिनी योग विद्या में तनिक सी भी ऊँचाई मिलती है वह देवताओं की निधियों को देख सकता है, दादूरी सिद्धि उसे प्राप्त हो जाती है। यक्षणियाँ आदि उसके चरणों की दासी बन जाती हैं। कामांगनाएँ उससे प्रभावित होकर उसकी सेवा में लगने को तत्पर रहती हैं। मात्र मूलाधार और स्वाधिष्ठान केन्द्र ही विकसित हो तो उस योगी की इतनी सारी योग्यता विकसित हो जाती है।

कहते हैं चाँगदेव महाराज शेर पर सवार होकर, विषधर का चाबुक बनाकर, अपने हजार से भी अधिक चुने हुए शिष्यों को साथ में लेकर पूना के पास आलंदी की ओर ज्ञानेश्वर महाराज से मिलने चले। ज्ञानेश्वर महाराज की उम्र अभी 22 वर्ष की ही है फिर भी वे गुरू हैं और चाँगदेव महाराज 1400 वर्ष के हैं, फिर भी उनके शिष्य हैं। गुरू 22 वर्ष का और चेला 1400 वर्ष का। यह आत्मविद्या की महिमा है। अष्टावक्र 12 वर्ष के हैं। ठिंगना शरीर, काली काया, शरीर में आठ

मोड़ हैं फिर भी विशाल काया, विशाल राज्य के धनी राजा जनक शिष्य बनकर उनसे आत्मविद्या का उपदेश पाते हैं।

अर्जुन आजानुबाहु था। स्वर्ग में जाने की विद्या तो थी उसके पास लेकिन आत्मविद्या में वह नन्हा था। श्रीकृष्ण ने जब उसे उपदेश दिया और भगवद् गीता उसे आत्मविद्या के रूप में मिली तब अर्जुन शोकरहित हुआ, मोहरहित हुआ और उसने कहाः

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

'हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशय रहित होकर स्थित हूँ। अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

(गीताः 18.73)

हनुमान जी के पास अष्टसिद्धि और नवनिधि थी। वे छोटे भी बन जाते थे और बड़े भी हो जाते थे। किसी की परीक्षा लेनी हो तो संकल्प मात्र से ब्राह्मण का रूप भी बना लेते थे। इतना सामर्थ्य होने के बाद भी उन्हें रामजी का सेवक क्यों बनना पड़ा ? इसलिए की रामजी के पास ब्रह्मविद्या है। रामजी ने वशिष्ठजी के चरणों में बैठकर 16 वर्ष की उम्र में ही ब्रह्मविद्या पाकर ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया था।

यह विद्या कठिन नहीं है लेकिन जिन्हें कठिन नहीं लगती, ऐसे महापुरूषों का मिलना कठिन है। ऐसे महापुरूष मिल भी जायें तो फिर इस विद्या को पाने की तत्परता रखने वाले शिष्य की मुलाकात होना कठिन है।

परीक्षित को मात्र सात दिन में ही मिल गई थी यह विद्या। स्कूली विद्या पूरी करना हो तो 10 वर्ष चाहिये। स्नातक होना हो तो 14-15 वर्ष चाहिए। अनुस्नातक होना हो तो 16-17 वर्ष चाहिए। लेकिन इस विद्या में तो 17 वर्ष भी कम हो सकते हैं और 17 दिन भी अधिक हो सकते हैं। पाने की तड़प और दिलाने वाले के सामर्थ्य पर यह विद्या निर्भर करती है। दिन, महीनों और वर्षों पर नहीं। केवल खाने वाले की भूख और खिलाने वाले के सामर्थ्य पर आश्रित है यह विद्या। खिलानेवाला दाता हो और भूखा खुद हो तो काम बन जाता है।

इस विद्या की प्राप्ति के लिए जरूरी है सदगुरू का सान्निध्य। जप, ध्यान आदि उसमें सहायक हैं।

ब्रह्ममुहूर्त में मनुष्य आत्मचिन्तन करे, भजन करे और आत्मविद्या पाने का संकल्प करे तो उसका मन शीघ्र ही उसके अधिकार को पा लेगा। आत्मविद्या को प्राप्त महापुरूषों के दर्शन के संबंध में कबीर जी ने कहा हैः

सातैं दिन नहीं करि सकै पाख पाख करि लेय।
कहे कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय।।
पाख पाख नहीं करि सकै मासम्मास करू जाय।

ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय।।

सप्ताह में भी संतदर्शन नहीं कर सकते तो पक्ष-पक्ष में करें। पाक्षिक दर्शन भी नहीं कर सकते हैं तो मास-मास में कर लें क्योंकि आत्मविद्याप्राप्त संतों के दर्शन से हमें आत्मविद्या की पुण्याई तो मिलती ही है, शांति भी मिलती है और हममें आत्मविद्या की योग्यता विकसित होती है। अष्टावक्र जैसे कोई गुरू और जनक जैसा कोई शिष्य मिल जाए तो यह विद्या जल्दी प्रकट हो जाती है। इस विद्या को पाने के लिए जितनी तड़प होगी, शरीर उतना ही संयमी होगा, मन संसार के आकर्षणों की ओर उतना ही कम दौड़ेगा। फलतः मनुष्य की मति उतनी ही दिव्य बनेगी।

कभी-कभी तो इस विद्या के अधिकारी पिछले जन्म से कुछ यत्न किये हुए भी होते हैं और कभी-कभी इस विद्या को आने वाले इसी जन्म के अधिकारी भी होते हैं, जैसे भगवान बुद्ध।

कपिलवस्तु के पड़ौसी राजा दंडपाणि की कन्या गोपा के साथ सिद्धार्थ का विवाह हुआ था। दस वर्ष तक गोपा ने अपने पति सिद्धार्थ के साथ, जो बाद में बुद्ध हुए, सुखमय जीवन व्यतीत किया। ग्यारहवें वर्ष में वह गर्भवती हुई और सगर्भावस्था के दौरान उसे अलग-अलग दिनों में तीन स्वप्न आये।

एक दिन पहला स्वप्न आया कि श्वेत सांड है जिसके मस्तक पर मणि है और वह सांड नगर के द्वार की ओर मदमस्त हुआ जा रहा है। इन्द्र मंदिर से गोपा को ध्वनि मिली और वह घबराई हुई स्वप्न में ही सिद्धार्थ के गले लिपट गई। वह सांड वापस निकल गया और कहता गया कि मैं जा रहा हूँ। गोपा को स्वप्न में ही अनुभूति हुई कि ऐश्वर्य और यश मानो चला गया हो।

गोपा ने दूसरा स्वप्न देखा कि चार महापुरूष गणों के साथ नगर में आ रहे हैं। चाँदी के तार और मणि से गूँथी हुई सुनहरी पताका है लेकिन वह पताका गिर पड़ी है। नभ से सुमन की वृष्टि हो रही है।

गोपा ने तीसरा स्वप्न देखा कि सिद्धार्थ अचानक गायब हो गये हैं। अपनी माला अब साँप बन गई है। उफ ! पैरों से पायल निकल पड़ी है, स्वर्ण कंगन गिर पड़े हैं, केश के सुमन धूलि में समा गये हैं।

श्वेत सांड, पताका आदि सब लक्षण इस बात का आभास करा रहे हैं कि सिद्धार्थ गायब हो गये हैं, पलायन हो गये हैं। गोपा घबराई।

सिद्धार्थ जब प्रातः उठे तो उनके सम्मुख गोपा ने स्वप्न की बात कही। सिद्धार्थ पूर्वजन्म के अभ्यासी थे। भोग तो उन्हें ऐसे ही मुफ्त में मिले थे। पिछले जन्मों का पुण्य था इसलिए इस जन्म में भी भोग सुख जन्म से ही मिला लेकिन भगवान सदा अपने भक्तों को भोगों में पड़ा रहने देना नहीं चाहते हैं बल्कि उन्हें ऊपर उठाकर सत्संग और साधना की तरफ ले जाते हैं।

सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी को सांत्वना दी लेकिन सुषुप्त वैराग्य जागृत हुआ और सिद्धार्थ चल पड़े। पति के जाने के बाद गोपा भी तपस्या में लग गई और प्रार्थना करने लगी किः "हे प्रभु ! मेरे पतिदेव तपस्या करने गये हैं। उनकी तपस्या में अप्सराएँ दुविधा उत्पन्न न करें.... कामिनियाँ उनकी तपस्या में विघ्न पैदा न करें। मैंने उनके साथ पाणिग्रहण किया है। मैं उनकी अर्द्धांगिनी हूँ। उनके विकास में मेरा भी विकास है।"

पति की भलाई के लिये इस प्रकार के संकल्प करती हुई गोपा भी तपस्या में लग गई।

सिद्धार्थ के पास जितना वैभव था, आपके पास तो उससे आधा भी नहीं होगा। वे जब घर छोड़कर गये तब अपने एक मंत्री को साथ ले गये थे जिसका नाम था छन्न। छन्न देखता है कि सिद्धार्थ वैराग्यवान हैं, वस्त्रालंकार उतारकर अब फकीरी वेश में जाना चाहते हैं, तब छन्न कहता हैः "आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ। उपदेश देना मेरा अधिकार नहीं है फिर भी उम्र में आपसे बड़ा होने के कारण मैं आपके हितार्थ निवेदन कर रहा हूँ कि राजकुमार ! आप जल्दी कर रहे हैं। इन महलों-अट्टालिकाओं, इन हीरे जवाहरातों व राज-वैभव की तमाम सुख-सुविधाओं को छोड़कर नंगे पैर आप कहाँ जा रहे हैं राजकुमार ! क्या होगा इससे ? गोपा जैसी सुन्दर, सेवाभावी तथा परछाई की नाईं तुम्हारे साथ चलने वाली पत्नी, राजमहल, यश आदि सुख-सामग्रियों को छोड़कर तुम फकीरी ले रहे हो ! कहीं तुम जल्दी तो नहीं कर रहे हो ? अगर एक बार तुम सब छोड़कर फकीर हो गये तो दोबारा सुख-साधन की ये वस्तुएँ जुटाना मुश्किल हो जायेगा। तुम बहुत जल्दी कर रहे हो राजकुमार ! ऐसा वैभव सभी को नहीं मिलता है। ये तुम्हारे भाग्य की चीजें हैं। तुम इन्हें क्यों ठुकरा रहे हो ?"

सिद्धार्थ कहते हैं- "छन्न ! ये महल, यह पत्नी, ये हीरे-मोती, ये जवाहरात, तूने दूर से देखे हैं जबकि मैं इन्हें नजदीक से देख चुका हूँ और अधिकारपूर्ण उनका उपयोग भी कर चुका हूँ। तूने यशोधरा (गोपा) को दूर से देखा है और मैं उसके साथ 10-11 वर्ष तक जीवन व्यतीत कर चुका हूँ, लेकिन छन्न ! इन चीजों को हम कितना सम्हाल पाएँगे। ये चीजें अपने शरीर के साथ कितनी भी जोड़ दो लेकिन जब शरीर ही अपना नहीं तो ये चीजें कब तक रहेंगी ? मैं जल्दी नहीं कर रहा हूँ अपितु सचमुच मुझे जल्दी करनी चाहिए थी। दस वर्षों तक गृहस्थ धर्म में रहकर ग्यारहवें वर्ष में बाप बन गया हूँ। फिर ससुर बनूँगा, समधी बनूँगा और ये सब बनते-बनते एक दिन बिगड़ जाऊँगा और मर जाऊँगा। अनाथ होकर मर जाऊँ उसके पहले मुझे जीवन की सच्चाई का दर्शन करने के लिए भिक्षुक होना जरूरी है।"

छन्न को समझाकर सिद्धार्थ निकल पड़े।

सात वर्षों तक सिद्धार्थ निरंतर लगे रहे तो बुद्धत्व को प्राप्त हुए। जब बोध प्राप्त हुआ तो बुद्ध कहलाये छन्न जिस रास्ते से छोड़ गया था उससे नहीं, दूसरे रास्ते से बुद्ध वापस अपने घर आये।

पिता कहते हैं- "हमारे खानदान में ऐसा कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ जो भीख माँगकर खाय और तू राजपाट होते हुए भी साधु बनकर भिक्षा माँगकर खाता है !"

बुद्ध बोलेः "राजन ! तुम्हारा रास्ता अलग है और मेरा रास्ता अलग है। मैं तुम्हारे कुटुम्ब से गुजरा अवश्य हूँ लेकिन हकीकत में मैं तो अनंत जन्मों से यात्रा करने वाला पथिक हूँ। प्रत्येक जीव अपने कर्मों की यात्रा लेकर चलता है। कुटुम्बी बीच में मिल जाते हैं और अन्त में फिर छूट जाते हैं लेकिन फिर जो नहीं छूटता वह परमात्मा ही सार है, बाकी सब खिलवाड़ है।"

बहुत सारे लोग बुद्ध के दर्शन करने आये लेकिन गोपा नहीं आई। उसने संदेशा भिजवाया कि मैं आपको छोड़कर नहीं गई जो मैं आपसे मिलने आऊँ। आप मुझे छोड़कर गये हैं। भले ही आप लोगों की दृष्टि में चाहे भगवान बन गये, बुद्ध बन गये लेकिन मैं तो अभी भी आपको अपने पति की दृष्टि से देखते हुए आपकी पत्नी ही हूँ इसलिए आप स्वयं ही मुझसे मिलने आइये।"

गोपा की तपस्या व शुभकामना से प्रसन्न होकर बुद्ध भिक्षुक-साधु होने के बाद भी अपनी पत्नी से वार्तालाप करने, मिलने गये लेकिन संसारी पति-पत्नी की तरह मिलने नहीं, ज्ञानयुक्त वार्तालाप करने गये।

पुत्र राहुल को गोपा कहती हैः "पिता से अपनी विरासत माँगो।"

राहुल कहता हैः "पिता जी ! मेरी विरासत ?"

बुद्ध कहते हैः "तेरी विरासत ! ले यह भिक्षापात्र। इससे बड़ी विरासत क्या हो सकती है ?" उस बच्चे को भी बुद्ध ने दीक्षा दे दी।

बुद्ध जानते हैं फकीरी का माहात्म्य। बुद्ध जानते हैं आत्मा का माहात्म्य। बुद्ध जानते हैं क्षमा, करूणा व दया का माहात्म्य। शरीर को कितना ही खिलाया..... पिलाया.... घुमाया..... अंत में क्या ? सारी जिन्दगी इसके पीछे लग गई फिर भी बेवफा रहा। कभी सिर में दर्द है तो कभी पेट में दर्द है। कभी बुढ़ापे की कमजोरी है तो कभी मेले की धक्का-मुक्की की थकान है।

तन धरिया कोई न सुखिया देखा।
जो देखा सो दुखिया रे।।

यह शरीर कितनी भी सुविधाओं में रहा, अंत में तो इसका परिणाम राख है। यह शरीर राख में जल जाय उसके पहले जीव अगर अपने नाथ से मिल जाय तो उसका नाम है पुरूषार्थ। ऐसा पुरूषार्थ करने वाला भगवन्नाम से अपना मंगल कर सकता है।

सर्वमंगलमांगल्यं आयुष्यव्याधिनाशनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम्।।

भगवन्नाम के कीर्तन में मांगल्य होता है। सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति भी एक दिन इससे ही जगती है।

चैतन्य महाप्रभु बंगाल मे हरि बोल... हरि बोल...... करते हुए कीर्तन करते तो कई बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों ने उन्हें टोका किः "तुम दर्शनशास्त्र और न्यायशास्त्र के इतने बड़े धुरन्धर

विद्वान होने के बाद भी बालकों की तरह हरि बोल.... हरि बोल... .कर रहे हो ? हमें देखो ! कैसे महामंडलेश्वर 1008 विश्वगुरू, जगदगुरू होकर बैठे हैं और तुम हो कि बच्चों जैसी तालियाँ बजा रहे हो। जरा अपनी इज्जत का तो ख्याल रखो ! इतने बड़े विद्वान हो फिर भी ऐसा करते हो ?"

गौरांग ने कहाः "मैंने ऐसा विद्वान होकर देख लिया। न्यायशास्त्र का बड़े से बड़ा ग्रन्थ भी पढ़कर देख लिया लेकिन सारी विद्वता तब तक अन्याय ही है जब तक कि मनुष्य ने अपने आत्मरस को नहीं जगाया। पृथ्वी का आधार जल है, जल का आधार तेज है, तेज का आधार वायु है, वायु का आधार आकाश है, आकाश का आधार महत्तत्व है, महत्तत्व का आधार प्रकृति है, प्रकृति का आधार परमात्मा है और परमात्मा को जानना ही न्याय है, बाकी सब अन्याय है।"

गौरांग को जिन दिनों वैराग्य हुआ था उन दिनों विद्यार्थियों को वे ऐसा ही बताते थे। क्लास के विद्यार्थी कहते किः "यदि आप हमें ऐसा ही पढ़ाएँगे तो परीक्षा में हमें नंबर ही नहीं मिलेंगे।" तब गौरांग कहतेः "परीक्षा में भले नंबर न मिलें लेकिन यह बात समझ ली तो परमात्मा पूरे नंबर देगा।"

अपने परमात्मा को जानना न्याय है, बाकी सब अन्याय है। कितना भी खा लिया, घूम लिया, कितनी भी चतुराई कर ली.... अंत में क्या ? तुलसीदास जी कहते हैं-

चतुराई चूल्हे पड़ी, पूर पयों आचार।
तुलसी हरि के भजन बिन, चारों वरन चमार।।

शिवजी ने पार्वती से कहाः

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

'अजी ! हमारी तो फलानी-फलानी दुकान थी...... फिर हमारी फैक्ट्री हो गई..... फिर हमारी ये हो गई वह... वह हो गई....' लेकिन अंत में देखो तो आँख बन्द हो जाएगी भैया ! सब सपना हो जाएगा।

सुबह का बचपन हँसते देखा, दोपहर की मस्त जवानी।
शाम का बुढ़ापा ढलते देखा, रात को खतम कहानी।।

इस शरीर की कहानी खत्म हो जाए उसके पहले तुम्हारे और परमात्मा के बीच का पर्दा खत्म हो जाये, ऐसी आसाराम की आशा है।

यह पर्दा ही हमें परेशान कर रहा है। यह कोई एक दिन में हटता भी नहीं है। जैसे अनपढ़ बालक है तो उस पर से अशिक्षा का पर्दा एक दिन में हटता नहीं है। पढ़ते-पढ़ते-पढ़ते वह इतना विद्वान हो जाता है कि फिर आप उसे अनपढ़ नहीं कह सकते हो। ऐसे ही आत्मज्ञानी महापुरूषों का सत्संग सुनते-सुनते, सेवा-सत्कर्म करते-करते, पाप-ताप काटते-काटते, अविद्या का हिस्सा कटते-कटते जब साधक ब्रह्मविद्या में पूर्ण हो जाता है तो ब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। ज्ञान होता है तो फिर जीव अज्ञानी नहीं रहता है, ब्रह्मज्ञानी हो जाता है।

ब्रह्मज्ञानी की महिमा वशिष्ठजी तो करते ही हैं, कृष्ण जी युद्ध के मैदान में ब्रह्मज्ञानी की महिमा किये बिना नहीं रहते।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद् भक्तः स मे प्रियः।।

'जो योगी निरंतर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए हैं और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।'

(गीताः 12.14)

अर्जुन के आगे श्रीकृष्ण ब्रह्मज्ञान की महिमा गाते हैं। अर्जुन पूछता हैः "ऐसा स्थितप्रज्ञ कौन है जिसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं।"

श्रीकृष्ण कहते हैं-

प्रजाहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

'हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरूष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।'

(गीताः 2.55)

हमारे सनातन धर्म के ग्रन्थों में तीन प्रकार के सिद्धों की महिमा आती है। एक जो भक्ति से सिद्ध हुए हैं उन पुरूषों एवं महिलाओं की महिमा आती है। दूसरे जो योग से सिद्ध हुए हैं उनकी महिमा आती है। तीसरे जो ज्ञान से सिद्ध हुए हैं अर्थात् भक्ति करते करते भेदभावरहित अभिन्न तत्त्व को पाये हैं, ऐसे सिद्धों की महिमा आती है।

भक्त और भगवान में ही दूरी मिट जाए..... भक्ति का अर्थ यही है। 'भक्त' अर्थात् जो ईश्वर से विभक्त न हो, उसको भक्त कहते हैं। योग का अर्थ है जीव ब्रह्म की एकता। तत्त्वज्ञान से भी कोई आत्मज्ञान पा लेता है। ऐसे तीन प्रकार के सिद्धों की महिमा का वर्णन हमारे धर्मग्रन्थों में आता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।

'जो पुरूष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है....'

(गीताः 12.13)

यह भक्ति मार्ग के सिद्धों की महिमा है। **संतुष्टः सततं योगी....** यह योग मार्ग की महिमा है। **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते...** आदि श्लोक ज्ञानमार्ग की महिमा का बयान करते हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

'जो पुरूष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और मेरे लिए वह अदृश्य नहीं होता।'

(गीताः 6.30)

जो मुझमें सबमें और सब मुझमें देखता है उससे मैं अलग नहीं और अर्जुन ! वह मुझसे अलग नहीं। ऐसा ब्रह्मज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप है। मैं अपनी बात काट लूँगा लेकिन उसकी बात पूरी होने दूँगा, ऐसा वह मुझे प्यारा है।

ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावहि।
ब्रह्मज्ञानी को बल-बल जावहि।।
ब्रह्मज्ञानी मुगत-भुगत का दाता।
ब्रह्मज्ञानी पूरण पुरूष विधाता।।
ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर।
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर।।
ब्रह्मज्ञानी का कथ्या न जाई आधा अक्खर।
नानक ब्रह्मज्ञानी सबका ठाकुर।।

इन तीन प्रकार के सिद्धों की महिमा गीता में तथा अन्य धर्मग्रन्थों में आती है। वैसे तो और भी कई प्रकार के सिद्ध होते हैं। जैसे चुटकी बजाकर अंगूठी या अन्य कोई वस्तु निकालने वाले। आम का मौसम नहीं है फिर भी आम निकालकर दे देंगे। यहाँ मौसम नहीं है तो क्या हुआ, मद्रास में तो है। एक क्षण में वहाँ से लाकर दिखा देंगे।

वृन्दावन वाले अखंडानंद सरस्वती जी महाराज अपने साथ नौ अन्य साधुओं को लेकर किसी ऐसे ही सिद्ध की सिद्धाई देखने के लिए गये थे जो चुटकी बजाते ही मनचाही वस्तुएँ दे देता था। उस समय रात के दस बजे थे। उन्होंने सोचा कि इससे ऐसी कोई चीज माँगे जिसे देने में इसको जरा विचार करना पड़े।

सिद्ध ने स्वागत कियाः "अच्छा ! संत लोग आये हो। कैसे हो ?"

संतों ने कहाः "ठीक है, महाराज ! आपका नाम सुनकर आये हैं। भूखे हैं, भोजन करा दो।"

सिद्ध ने पूछाः "क्या खाओगे ?"

संतजनः "मालपूए खाने की इच्छा है, महाराज !"

सिद्धः "अच्छा ! रात को दस बजे साधुओं को मालपूए खाना है ? चलो, ठीक है।" उसने संतों को थोड़ा बातों में लगा दिया और अपनी ओर से भीतर जो भी संकल्प करना था, वह कर

दिया। उन्होंने आकाश में हाथ घुमाया और दस लोग जितने मालपूए खा सकें, इतने मालपूए आ गये। दसों साधुओं ने मालपूए खाए, स्वाद भी आया, भूख भी मिटी और नींद भी आई। यह कोई स्वप्न या हिप्नोटिज्म नहीं था, उन्होंने सचमुच में मालपूए खाये थे।

अखंडानंदजी के ही शब्दों में- "प्रातः जब हम लोग मालपूए खाली करने, लोटा लेकर गाँव के बाहर की ओर गये तो देखा कि उधर दो मेहतरानी (हरिजन बाई) आपस में झगड़ा कर रही थीं। एक बाई दूसरी से कह रही थीः "तेरी नजर पड़ती है और मेरी चीजें चोरी हो जाती हैं।"

दूसरीः "मैं जानती ही नहीं की तेरे मालपूए कहाँ गये। मैंने तो देखे भी नहीं।"

पहलीः "तू झूठ बोलती है, रांड ! कल शादी थी और बारातियों के जूठन में से तथा इधर उधर से माँगकर बड़ी मेहनत से मैं दस आदमी भरपेट खा सके, इतनी बड़ी थाली भर के मालपूए लाई थी और सारे के सारे मालपूए तसले सहित गायब हो गये। एक भी नहीं बचा। तो क्या भूत ले गये या डाकिन ले गई ? रांड ! तू ही ले गई होगी।"

साधू बाबा सोचते हैं- 'न यह रांड ले गई न कोई डाकिन ले गई। मालपूए तो भूत उठाकर लाया और हमने खाये। मालपूए तो खाली हो गये लेकिन ग्लानि खाली करने में बड़ा परिश्रम लगा। धत्त तेरी की ! यह तो भूत सिद्धि है भाई !'

चुटकी बजाकर यूँ चीज आदि दे देना तो अलग सिद्धियाँ हैं, आत्मसिद्धि नहीं। इससे सामने वाला प्रभावित तो होगा, थोड़ी देर वाह-वाही करेगा लेकिन जिसकी वाह-वाही हुई वह शरीर तो जल जायेगा और जो वाह-वाही करेगा उसका भी कल्याण नहीं होगा। उसे आत्मज्ञान और आत्मशांति भी नहीं मिलेगी। आप देव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, भूत आदि को पूजकर वश में करके भभूत, रिंग या मालपूए मँगाकर दो यह तो ठीक है लेकिन इससे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होगा।

अफ्रीका में नैरोबी से करीब 350 कि.मी. दूर मोंबासा में पुनीत महाराज के भक्तों का पुनीत भक्त मंडल चलता है। वे गुजराती लोग थे और सत्संगी थे। उन्होंने मुझे बतायाः

"स्वामी जी ! दो-चार दिन पहले भारत का एक डुप्लीकेट साईंबाबा, भभूत निकालनेवाला आया था। हमारे सम्मुख भभूत निकालकर वह अपने चमत्कार का प्रभाव दिखा रहा था।"

मैंने पूछाः "फिर क्या हुआ ?"

वे बोलेः "बाबाजी ! हम तो सत्संगी हैं। हमें इन चमत्कारों से, भभूत आदि से कोई प्रभावित नहीं कर सकता।"

मैंने पूछाः "फिर तुमने क्या कहा उसे ?"

वे बोलेः "हमने कहाः बाबा ! आप भभूत निकालते हैं, ठीक है.... लेकिन इससे तो अच्छा यह है कि हिन्दुस्तान के कच्छ में अकाल पड़ा है, वहाँ अपने चमत्कार से जरा गेहूँ निकालकर लोगों की भूख मिटाओ। इस भभूत से क्या होगा ?"

कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति, योग और ज्ञान की सिद्धि के आगे अन्य सभी सिद्धियाँ छोटी हो जाती हैं। भक्ति भगवान से मिलाती है, योग भगवान में बिठाता है और ज्ञान भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार करा देता है।

कीर्तन करते-करते गौरांग (चैतन्य महाप्रभु) भगवान में इतने ओतप्रोत हो गये कि उन्हें पता ही नहीं चला कि मैं पगडंडी भूल गया हूँ। भावविभोर होकर चलते चलते थे वे किसी तालाब में गिर पड़े। उनके प्राण ऊपर चढ़ गये और भावसमाधि में तालाब में ही पड़े रहे। दूसरे दिन प्रातः जब मछुआरों के बच्चों ने जाल फेंका तो उन्होंने समझा कि कोई बड़ी मछली आई है लेकिन जब देखा तो दंग रह गये ! अरे, बड़ी मछली-मछला नहीं, यह तो अच्छा-खासा कोई साधु है !

गौरांग की जाल में से निकाला, हिलाया-डुलाया तो उनकी भावसमाधि उतरी लेकिन गौरांग का स्पर्श होने से उन मछुआरे बच्चों को गौरांग के सान्निध्य से संक्रामक शक्ति का लाभ मिल गया। वे बच्चे स्वतः ही 'हरि बोल...... हरि बोल.....' करके भावविभोर होने लगे। उनके माँ-बाप ने सोचा कि शायद ये लड़के बीमार हो गये हैं। हकीम-डॉक्टरों ने दवाई भी दी लेकिन कोई असर नहीं हुआ। बीमारी होती तो भागती, उन्हें तो जन्म-मरण के पाप को दूर करने वाली, भक्तिरस की मस्ती चढ़ी थी। अन्ततः कोई इलाज काम न आया तो उसी बाबा को खोजा गया। गौरांग मिला तो उन बच्चों के माँ-बाप कहने लगेः "बाबा ! इन बच्चों ने तुमको पानी में से निकाला। तुम्हें तो जीवन मिल गया लेकिन हमारे बच्चों को बीमारी मिल गई। इन्हें चंगा कर दो, महाराज !"

महाराज ने कहाः "ये तो चंगे हैं और अधिक चंगे होंगे। इन्हें तो मुफ्त में खजाना मिल गया है। इनकी साधना चलने दो, कीर्तन चलने दो।

सर्वमंगलमांगल्यं आयुष्यव्याधिनाशनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम्।।

इनको ऐसी चीज मिली है अब घाटा क्या है ?" ऐसा समझा बुझाकर उन्हें वापस भेज दिया लेकिन निगुरों का भाग्य भी तो वैसा ही होता है, नासमझों का भाग्य मूर्खता ही पैदा करता है। दो दिन बाद वे ही मछुआरे वापस आये और कहने लगेः

"महाराज ! ये भुक्ति-मुक्ति हम नहीं जानते। हमारे लड़के जैसे थे, वैसे कर दो। 'हरि बोल.... हरि बोल....' करके बैठे रहते हैं। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं तो कभी रोमांचित होते हैं।"

ये अष्टसात्त्विक भाव कहलाते हैं। जब महापुरूष की कृपा बरसती है तो मनुष्य में अष्टसात्त्विक भाव में से कोई न कोई भाव आ जाता है। अपने आश्रम में शिविर लगते हैं तो कनाडा का वैज्ञानिक भी आ जाता है, तो हिन्दुस्तान के सेठ, उद्योगपति और छोटी मोटी नौकरी बिजनैस करने वाले भी आ जाते हैं। जब उन सबको शिविर में प्रयोग कराते हैं तो किसी को पहले दिन रंग लगता है, किसी को दूसरे दिन, किसी को तीसरे दिन। चौथे दिन तक तो 95

प्रतिशत लोग रंगे जाते हैं। बाकी के 5 प्रतिशत इसलिए ऊर्ध्वगामी नहीं होते क्योंकि वे या तो मंदबुद्धि होते हैं अथवा उनके शरीर में ओज-वीर्य नहीं होता। उनकी प्राणशक्ति क्षीण हो गई होती है।

मछुआरों से गौरांग ने कहाः "भैया ! तुम्हारा तो बेड़ा पार हो जाएगा।"

मछुआरेः "महाराज ! हमारे लड़के जैसे थे वैसे कर दो। 'हरि बोल.... हरि बोल....' करते हुए दिन भर वे पागलों जैसे नाचते-कूदते रहते हैं और आप हैं कि बेड़ा पार होने की बात नाचते कूदते रहते हैं और आप है कि बेड़ा पार होने की बात कर रहे हैं। जैसे थे वैसे कर दो नहीं तो ठीक नहीं रहेगा।"

मछुआरे जो ठहरे !

ज्ञानी के हम गुरू हैं, मूरख के हैं दास।
उसने उठाया डंडा तो हमने जोड़े हाथ।।

जो ज्ञान समझते हैं उनके आगे तो हम गुरू हैं, लेकिन जो एकदम जड़बुद्धि हैं, ठस हैं, उनके आगे तो भाई ! दास होकर जान छुड़ाओ। कब तक मूर्खों से टकराते रहोगे ? कह दो उनसेः 'चल बाबा ! तू जो कहता है, ठीक है। जा, मत्था मत खपा।'

मछुआरे गुर्राते हैं- "महाराज ! लड़कों को ठीक कर दो।"

गौरांग बोलेः "ठीक कर दूँ ? अच्छा, तो इन्हें पापियों के घर का अन्न खिलाओ।"

वे बोलेः "महाराज ! हम खुद मच्छीमार होने के कारण पापी हैं।"

गौरांगः "फिर भी परिश्रम करते हो, मेहनत करते हो। जो आदमी दान का खाय और भजन न करे, ब्राह्मण हो और दान का लेता हो लेकिन भजन न करता हो, उसके घर का अन्न खिलाओ। जिसकी माता मासिक धर्म में हो फिर भी भोजन बनाती हो तथा अत्यधिक पापी विचार की हो, उसके घर का अन्न खिलाओ। जो अति पापी, अति कामी, क्रोधी लोभी, मोही हों, ऐसे लोगों के सम्पर्क में इन्हें बिठाओ ताकि भक्ति क्षीण हो जाए। फिर ये जैसे थे वैसे हो जाएँगे।

कुछ लोगों के संग में अभक्त भी भक्त होने लगता है और कुछ लोगों के संग में भक्त भी अभक्त हो जाता है। जैसे सिंहस्थ या कुंभ के वातावरण में कितना ही अभक्त क्यों न हो, भक्ति का रंग उस पर लग ही जाएगा। चाहे कितना भी बड़ा नास्तिक हो, दो चार बार सत्संग के माहौल में आ जाए तो आस्तिक बन ही जाएगा। लेकिन 25 नास्तिकों के बीच यदि कोई एकाध आस्तिक रहेगा तो उसे नास्तिक के संस्कार घेर लेंगे।

इसीलिए साधक को जब तक साध्य नहीं मिलता तब तक वह संग करने के लिए विचार करे। कुसंग से बचे, सत्संग ही करे और सजातीय संग करे। विजातीय संग करने से साधक की साधना गिरने लगती है।

साधक ज्यों-ज्यों अच्छा संग करेगा त्यों-त्यों अच्छे में परमात्मा का रंग लगेगा। अच्छा संग नहीं मिलता है तो एकान्त में रहो। एकान्त में नहीं रह सकते हो तो अच्छे अच्छे महापुरूषों के वचनों का श्रवण, मनन व चिन्तन करो।

आजकल तो बड़ा सुविधापूर्ण नायलोन युग है। हम लोगों ने तो बहुत परिश्रम किया तब गुरू के वचन सुनाई पड़ते थे। बहुत मेहनत करते तब कहीं जाकर थोड़ा-बहुत सत्संग मिलता था। आजकल तो आप पलंग पर पड़े हैं और अंगूठा दबा दिया तो कैसेट चल पड़ी.... बाबाजी का सत्संग मिल रहा है। बाबाजी बोल रहे हैं और आप सो रहे हैं। अचेतन मन में सत्संग के संस्कार स्वतः निर्मित हो रहे हैं। जब जरूरत पड़ी, अंगुली दबाई कि 'बाबा बोलो' और जब जरूरत पड़ी, बाबा को चुप कर दो। आज कल के मैकेनिक युग में बाबाओं को अपनी अंगुली पर बुलवाने की व्यवस्था हो गई है।

पहले के जमाने में तो महापुरूषों के हस्तलिखित वचन बड़ी कठिनाइयों के बाद उपलब्ध होते थे। आजकल तो बाबाजी बोले.... गया प्रेस में और सुबह तक तो अखबार बनकर, पुस्तक बनकर आपके हाथों में आ गया... जब चाहो तब खोलो पन्ने।

गांधी जी कहते थेः "मुझे दूध पिलाने वाली माँ तो छोड़कर स्वर्गवासी हो गई लेकिन जब मैं थकता हूँ, हारता हूँ, संसार की झंझटों में उलझता हूँ तो मैं शांति के लिए अपनी माँ की गोद खोजता हूँ और वह कोई और माँ नहीं, गीतारूपी माता है जिसका पृष्ठ खोलते ही मुझे ऐसा ज्ञान मिल जाता है कि मैं उससे स्वस्थ रहता हूँ और इतनी टक्कर झेलते हुए भी मैं आराम की नींद ले रहा हूँ। यह गीता का ज्ञान ही तो है।"

......और वही गीता का ज्ञान सत्संग में सविस्तार सब लोग समझ सकें तथा विनोद, आनंद, ज्ञान, ध्यान लगे ऐसा आप लोगों को भी मिल रहा है। इस युग में जैसे पतन के साधन आसानी से मिलते हैं, ऐसे ही उन्नति के साधन भी आराम से मिल रहे हैं। उस युग में राजा-महाराजा राजपाट छोड़कर ब्रह्मज्ञानी गुरूओं को खोजते थे। हमने सात-सात वर्ष तक गुरूदेव की आज्ञानुसार अमुक-अमुक स्थान पर जीवन-यापन किया। आप लोगों को तो इतना कुछ नहीं करना पड़ रहा है।

हमारे गुरूजी को जो कष्ट सहना पड़ा उसका सौवाँ हिस्सा भी मुझे नहीं सहना पड़ा और हजारवाँ हिस्सा भी आपको नहीं सहना पड़ता है। शिविरों में आते हो तो रस, पूड़ी, हलुवा, मालपूए आदि खाने को मिलता है। आपका बिगड़ता क्या है ? हम तो भाई ! थोड़े से गेहूँ के दाने, थोड़े से मूँग के दाने भिगोकर रखते और चबा चबाकर खाते। हमारे गुरूजी छटांग भर कुछ भिगाकर रखते और चबा चबाकर खाते। वर्षों तक उसी में लगे रहे तब उन्हें कहीं साक्षात्कार हुआ। आपको तो चलते-चलते दर्शन, सत्संग आदि मिल रहा है। "सस्ता, अच्छा, अधिक और उधार..... ऐसा भी नहीं बल्कि अधिक मुफ्त में और ऊपर से प्रसाद भी।

सर्वमंगलमांगल्यं आयुष्यव्याधिनाशनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम्।।

सब मंगलों से भी अधिक मंगल करने वाला भगवान का कीर्तन है। भगवान के नाम का कीर्तन सब मंगलों का भी मंगल है, व्याधिनाशक, दिव्य और भोग-मोक्ष देने वाला है। यह 'विष्णु धर्मोत्तर' ग्रन्थ का श्लोक है।

भगवान में मन लग जाता है तो ठीक है, अन्यथा भगवान के लिए चल पड़ो। जैसे कि सिद्धार्थ, उनकी पत्नी दंडपाणि की कन्या गोपा जो बाद में यशोधरा के नाम से प्रसिद्ध हुई। दस वर्षों तक सिद्धार्थ उसके साथ रहे और ग्यारहवें वर्ष में पिता बने और चल दिये। सात वर्ष तक तपस्या में लगे रहे। स्वप्न में जो देखा वह भी सपना हो गया, सात वर्ष की तपस्या भी सपना हो गया और बुद्ध का आत्मा अपना हो गया।

आपने आजतक जो कुछ सत्संग में सुना पढ़ा उसका विचार करते-करते उन वचनों को अपने अधिकार में ले आओ अथवा तो परमात्मा के ध्यान में तल्लीन हो जाओ....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ईश्वरकृपा की समीक्षा

संसार के दुःखों की मार लगने पर साधुताई का जीवन बिताए या फिर विवेक जागृत होने पर ऐसा जीवन बिताए यह मनुष्य के प्रारब्ध की बात है। जो पुण्यात्मा है वे विवेक से जाग जाते हैं और जिसके पुण्य कम हों उसे ठोकरें लगा-लगाकर भी परमात्मा उसे जगाने की व्यवस्था करता है। मरकर तो सभी ने छोड़ा है लेकिन जीते-जी आसक्ति छोड़नेवाला जीवनदाता के अनुभव को पा लेता है।

'नारदपंचरात्र' ग्रंथ में एक श्लोक आता हैः

देशत्यागो महानव्याधिः विरोधो बन्धुभिः सह।
धनहानि अपमानं च मदनुग्रहलक्षणम्।।

'राजा को देश त्यागना पड़े, व्यक्ति को अपना घर, गाँव, नगर, देश छोड़ना पड़े, महारोग हो, बन्धुओं की ओर से विरोध हो, धन की हानि हो, अपमान हो, यह सब अगर एक साथ भी किसी व्यक्ति को होने लग जाये तो भी हे नारद ! यह समझ लेना कि उस पर यह भी मेरी कृपा है। ये मेरे अनुग्रह के लक्षण हैं।'

बंगाल में खुदीराम नामक एक कृषक रहते थे। वे जिस गाँव में रहते थे वहाँ का मुखिया (जागीरदार) शोषक प्रकृति का व्यक्ति था। किसी का खेत गिरवी रखकर पैसे देता तो फिर वह खेत ही हड़प कर लेता था।

ऐसे ही किसी जरूरतमंद आदमी ने अपना खेत उसके पास गिरवी रखकर कुछ पैसे ले रखे थे। मुखिया ने कुछ समय बाद उसके ब्याज और मूलधन के योग दस हजार के पीछे एक शून्य बढ़ाकर दस हजार के एक लाख रूपये कर दिये। जब वह आदमी उधार चुकाने आया तो अपने खाते में एक लाख की राशि देखकर हैरान हो गया।

बात राजदरबार तक पहुँची। मुखिया ने कहाः

"महाराज ! मैंने तो यह खेत एक लाख रूपये में ही रखा है।"

उस आदमी ने कहाः "नहीं महाराज ! मैंने तो दस हजार में ही गिरवी रखा था।"

राजा ने दोनों को अपने अपने गवाह पेश करने को कहा। खुदीराम के पास वह मुखिया आया और कहने लगाः

"तुम्हारी बात राजा साहब मानते हैं इसलिए तुम मेरे लिए गवाही दे देना कि अमुक किसान ने मुझसे पैसे लिए हैं।"

खुदीरामः "पैसे लिये है, यह मैंने सुना है, लेकिन कितने लिये हैं यह मैंने देखा नहीं।"

मुखियाः "लाख रूपये लिए हैं।"

खुदीरामः "इतना तो नहीं हो सकता।"

मुखियाः "तुम्हें इससे क्या मतलब है ? तुम्हें तो सिर्फ इतना कहना है कि पैसे लिये हैं, बाकी मंत्रियों को तो मैं पटा लूँगा।"

खुदीरामः "मैं जानता हूँ कि मंत्री तुम्हारे घर आते हैं, खाना-पीना करते हैं। पुलिस के आदमियों को भी तुम अंगुली पर नचाते हो, मैं जानता हूँ लेकिन परमात्मा के नाम पर झूठी गवाई देने का पापकर्म तो मैं नहीं करूँगा।"

मुखियाः "झूठी गवाही कैसे ? उसने पैसे लिए हैं तो बाद में हो जाएगा।"

खुदीरामः "नहीं, मुझसे ऐसा नहीं होगा।"

मुखियाः "मुझे जानता है मैं गाँव का पटेल हूँ.... आगेवान हूँ.... सर्वे-सर्वा हूँ ? मेरी पहुँच कहाँ तक है तू जानता है ? मुझे इन्कार कर तू कैसे जियेगा ? कहाँ रहेगा ?"

खुदीरामः "मैं जानता हूँ कि आपसे दुश्मनी मोल लेना याने मौत का आमंत्रण देना लेकिन मौत शरीर को मार डालेगी, मुझ चैतन्य को नहीं। मैं अपने दिल को खराब नहीं करूँगा। मैं झूठ नहीं बोलूँगा। तुम चाहे कुछ भी कर लो।"

मुखियाः "देख ! अब उसके पैसे तो मैं बाद में वसूल करूँगा लेकिन पहले तेरी जमीन और तेरे सारे पैसे वसूल करूँगा।"

उस दुर्जन ने अपने षडयंत्र को आजमाकर खुदीराम को अपनी सौ बीघा से अधिक जमीन, जागीरी, गाँव का मकान आदि छोड़कर नानाड़े गाँव जाने पर मजबूर कर दिया।

बाहर से तो खुदीराम को दुःख मिला लेकिन ईश्वर की कृपा का फल देखियेः उसी खुदीराम के घर रामकृष्ण परमहंस जैसी आत्मा अवतरित हुई और विवेकानंद जैसा शिष्य रामकृष्ण के चरणों में पहुँचा।

मुखिया के द्वारा तो जुल्म ढाया गया था लेकिन करूणानिधि ने खुदीराम पर कितनी करूणा कर दी। खुदीराम स्वयं तर गये, और उन्होंने कइयों को तारने का मार्गदर्शन देनेवाले एक महान् योगी को अपने घर में जन्म दिया। पाप के धन से मुखिया के बेटे-बेटियाँ कुमार्गगामी हुए, जीते-जी वह अशांति की आग में जल मरा। अब कौन-से नरक में पड़ा होगा, यह भगवान ही जानते होंगे।

इससे स्पष्ट है कि ईश्वरकृपा की कभी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है कि वह कब कृपा करेगा। वह जो कुछ भी कर रहा है, उसकी कृपा ही है। केवल उसकी कृपा की समीक्षा कीजिये। मान हो चाहे अपमान, मनचाहा कार्य हो या न हो, चाहे फिर जुल्म भी हो, समीक्षा कीजिये। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि आप समीक्षा के नाम पर जुल्म सहते रहें, कंगाल हो जाएँ..... नहीं। अपनी ओर से आप यथायोग्य पुरूषार्थ करो लेकिन पुरूषार्थ के पीछे परमात्मा का हाथ देखना चाहिए। अपनी वासना, द्वेष, अहंकार या पलायनवादी स्वभाव का सहारा न लो। अपने व्यवहार के पीछे परमेश्वर की करूणा को आमंत्रित करो। परमेश्वर की कृपा अनवरत बरस रही है, उसकी समीक्षा करोगे तो आपके जीवन में निर्भरता व निर्द्वन्द्वता का प्रसाद आ जाएगा।

चाहे हजारों मंदिरों में जाओ, हजारों मस्जिदों-गिरजाघरों या गुरूद्वारे में जाओ परंतु जब तक तुम हृदयमंदिर में आकर हृदयेश्वर की कृपा की समीक्षा नहीं करोगे तब तक मंदिर-मस्जिदों की, तीर्थों की यात्रा पूरी न होगी। हृदयमंदिर हृदयेश्वर के जब तुम करीब आने लगोगे तब ही काबा-काशी की यात्रा पूरी होगी।

ईश्वर की कृपा को सबमें देखना यह ईश्वर की कृपा की समीक्षा है। कृपा तो न जाने किस-किस रूप में बरस रही है.... फिर चाहे वह औषधि के रूप में बरसे या मिठाई के रूप में, मान के रूप में बरसे या अपमान के रूप में, सत्संग में जाने की प्रेरणा के रूप में बरसे या सत्संग में किन्हीं संकेतों के रूप में। हम अगर सावधान रहें तो दिन भर उस परमेश्वर की कृपा की वृष्टि ही वृष्टि दिखेगी और आपका मन परमेश्वरमय हो जाएगा। फिर प्रारब्धवेग से आपके पुण्य, पाप, सुख-दुःख व्यतीत होते जाएँगे। समीक्षा करते-करते जिसके विषय में समीक्षा कर रहे हैं, उस कृपालु के साथ आपके चित्त का तादात्म्य हो जाएगा।

कितना सरल.... कितना मधुर उपाय है ! तुम्हारा मन ध्यान में लगता है तो बहुत अच्छा है। नहीं लगता है तो देखो कि "मन नहीं लगता है।" प्रार्थना करोः "भगवान ! मेरा मन ध्यान में नहीं लगता, मैं क्या करूँ ? तू जान।" तुम रोओः "तेरी कृपा बरस रही है फिर भी मन नहीं लगता।"

फिर भी मन नहीं लगता तो नहीं सही। 'तेरी कृपा होगी तब लगेगा, हम बैठे हैं'। ऐसा विचार करो। फिर तो उसी समय लग जाएगा मन। देखो मजा ! देखो चमत्कार !! शर्त है कि तुम ईमानदारी से उसके हो जाओ। समीक्षा करो उसकी कृपा की।

कलकत्ता में जयदयाल कसेरा नामक एक सेठ थे। उन्होंने अपने गुरूदेव से कहाः "बाबाजी ! मुझे ब्रह्मज्ञान तो हो गया है परन्तु आधा।"

बाबा चौंकेः "आधा कैसे ? सूरज आधा कैसे दिखेगा पागल ! दिखेगा तो पूरा दिखेगा।"

सेठः "महाराज ! मुझे तो आधा ही दिखता है।"

बाबाः "कैसे ?"

सेठः "सबमें भगवान है और सब वस्तुएँ भगवान की वस्तुएँ हैं। जो सबकी वस्तु है वह भगवान की वस्तु है, यह ज्ञान तो मुझे समझ में आ गया। सबकी वस्तु भी भगवान की है, सबकी है, यह ज्ञान अभी गले उतरता नहीं।"

बड़ा सज्जन सेठ था वह। वह समीक्षा कर रहा था अपने चित्त की।

एक दिन उसके यहाँ पुलिस इंस्पेक्टर का फोन आयाः

"आपके इकलौते लड़के का भयानकर एक्सीडैंट हो गया है।"

सेठ उससे पूछते हैं- "लड़का जिन्दा है या मर गया ?"

थानेदार चौंक कर बोलाः "आप पिता होकर इतने कठोर वचन बोल रहे हैं ?"

सेठः "नहीं भाई ! मैं इसलिए पूछ रहा हूँ कि यदि मर गया है तो हम उसकी श्मशान यात्रा की व्यवस्था करें और जिन्दा हो तो इलाज की व्यवस्था करें।"

थानेदारः "आप सचमुच के पिता हो या गोद लिया था लड़के को ?"

सेठ जी बोलेः "थानेदार साहब। मैं सगा बाप हूँ इसलिए उसकी अच्छी उन्नति हो ऐसा कह रहा हूँ। उसे चोट लगी हो और मैं अपने दिल को चोट पहुँचाकर उसका उपचार करवाऊँगा तो वह ठीक न होगा और अगर वह मर गया है और मैं रोता रहूँगा तो भी उसकी यात्रा ठीक नहीं होगी। अगर वह मर गया है तो मैं श्मशान यात्रा की तैयारी करूँ, मित्रों को फोन करूँ और बुलवाऊँ। अगर जिन्दा है तो उचित उपचार के लिए अच्छे चिकित्सालय में दाखिल करवाऊँ। इसमें रोने या दुःखी होने की क्या बात है ? उस परमात्मा को जो अच्छा लगता है वही तो वह करता है और शायद इसी में मेरा और मेरे बच्चे का कल्याण होगा। वह मेरा मोह तोड़ना चाहता होगा और मेरे बेटे को अभी आगे की यात्रा करना बाकी रहा होगा तो मैं फरियाद करनेवाला कौन होता हूँ, थानेदार साहब !"

हमारा परमात्मा कोई कंगाल थोड़े ही है जो कि हमें एक ही अवस्था में, एक ही शरीर में और एक ही परिस्थिति में रख दें। उसके पास तो चौरासी-चौरासी लाख चोले हैं अपने प्यारे बच्चों के लिए तथा करोड़ों-करोड़ों अवस्थाएँ भी हैं जिनसे वह गुजारता-गुजारता अन्त में जीवात्मा को परमात्मस्वभाव में जागृत करता ही है।

हमें उसकी कृपा की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह कब कृपा करेगा। प्रतीक्षा तो उस वस्तु व्यक्ति की होती है जो वर्तमान में नहीं है, जिसका अभाव है, जो बाद में हो सकती है, जो मिलेगी या मिलने वाली है लेकिन समीक्षा उसकी होती है जो वर्तमान में है, जो सदा से हमारे साथ है, अभी-भी है और अन्त तक साथ नहीं छोड़ेगी, ऐसी परमात्मा की करूणा-कृपा को सिर्फ देखना है।

हमारे पास देखने की, समीक्षा करने की कला नहीं है। हममें 'बनने' की आदत है। 'देखने' में आनन्द है और 'बनने' में परेशानी है। किसी सेठ को देखो तो सोचो कि सब सेठों का सेठ परमात्मा उसमें चमक रहा है। वाह ! 'ऐसा सोचकर आनन्द लो। लेकिन सेठ बनने का विचार किया और सेठ बने तो इन्कम टैक्स की व्यवस्था खोपड़ी में रखनी पड़ेगी। गरीब बनेगा तो गरीब 'होने' में भी मजा नहीं..... अमीर 'होने' में भी मजा नहीं...... माई 'होने' में भी मजा नहीं..... भाई 'होने' में भी मजा नहीं। तू जो 'है' उसका केवल पार्ट अदा कर। तू 'देखने' वाला हो..... 'होने' वाला मत बन।

बनोगे तो बिगड़ोगे और देखोगे तो तर जाओगे।

नरसिंह मेहता के पुत्र शामलशाह की मृत्यु हुई तो वे पिता नहीं हो रहे हैं, पिता 'होने' को देख रहे हैं। वे रोते भी नहीं हैं। वे तो कह रहे हैं-

जे गम्युं जगत गुरूदेव जगदीश ने।
ते तणो खरखरो फोक करवो।।

"उसको जो अच्छा लगता है, ठीक है। मैं फरियाद करने वाला कौन होता हूँ ?"

मेरो चिन्तयो होत नहीं, हरि को चिन्त्यो होत।
हरि को चिन्त्यो हरि करे, मैं रहूँ निश्चिन्त।।

हम कहते रहते हैं किः "भगवान ! यह कर..... वह कर..... हम जैसा चाहें वैसा तू कर।" हम अल्प मति के लोग यह समीक्षा ही नहीं कर पाते कि उसे हमारा कितना ख्याल है ! माता के गर्भ से जब हमारा जन्म हुआ तो दूध क्या हमने बनाया था या हमारे बाप-दादा ने ? कितना पौष्टिक.... कितना शुद्ध दूध ! जितना चाहा, पिया। फिर मुँह घुमा दिया। फिर भी सदैव एकदम ताजा और शुद्ध। वह झूठा-अशुद्ध भी नहीं माना जाता। शुद्ध ही रहता है। अधिक मीठा होता तो डायाबिटीज हो जाती बच्चों को, फीका होता तो भाता नहीं। अधिक गरम होता तो मुँह जल जाता और ठंडा भी होता तो वायु करता। न अधिक मीठा न फीका, न अधिक ठंडा न गरम। जब जितना चाहा, पी लिया। यह व्यवस्था किसकी है ?

तुम्हारे इस धरती पर आने के पहले ही उसने तुम्हारे खाने पीने की व्यवस्था जमा रखी है और मरने के बाद भी तुम्हारे लोक लोकांतर की व्यवस्था जमा रखी है। तुम्हारे चाहने पर इस इन्द्रियगत जगत् के नश्वर सुख से ऊपर उठने की मति भी वह देता है एवं इस मति को बढ़ाने वाला सत्संग भी इस समय वही प्रदान कर रहा है।

अगर तुम्हारा धन में मोह होता है तो इन्कमटैक्स की समस्या आ जाती है। यदि परिवार में मोह होता है तो परिवार में कुछ-न-कुछ गड़बड़ी आ जाती है ताकि तुम आगे बढ़ो। यदि तुम अहंकार से ग्रस्त हो तो किसी शत्रु द्वारा संघर्ष करवाकर तुम्हारा बेलेन्स ठीक करता है। अगर तुम्हें विषाद, थकान या हताशा होती है तो किसी स्नेही या मित्र के द्वारा मदद भी दिलवा देता है। तुम सास हो तो बहू के द्वारा और बहू हो तो सास के द्वारा भी वह तुम्हें ठीक करवा रहा है। तुम पिता हो तो पुत्र के द्वारा अथवा पुत्र हो तो पिता या मित्र के द्वारा वह तुम्हें ठीक कर रहा है।

बच्चा मैला होता है और उसे स्नान कराओ, मलो तो उसे बुरा लगता लेकिन माँ की नजर में यह हितकर होता है। माँ चाहे बच्चे को डाँटे, कड़वी दवा पिलावे, पकवान खिलावे, वस्त्रालंकारों से सुसज्ज करे या काले काजल का टीका लगावे, सबमें माँ का हितकर भाव व करूणा होती है। बच्चा अगर समीक्षा करे तो माँ की हर चेष्टा में माँ की करूणा ही दिखेगी। ऐसे ही हम समीक्षा करें तो परमात्मा की करूणा-कृपा ही दिखेगी। हजारों माताओं का हृदय मिलाओ तब कहीं मुश्किल से संत-भगवंत के हृदय की कल्पना कर सकते हो। हो सकता है माँ अल्पज्ञ, अल्पशक्ति और अल्पमति की हो इसलिए वह 'भविष्य में बेटा सुख देगा' इस मोह से पालन-पोषण करे। माता की मार या डाँट में व्यक्तिगत दाह या स्वार्थ हो सकता है लेकिन परमात्मा को व्यक्तिगत डाह या स्वार्थ नहीं होता। वह जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।

जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा अच्छा ही है।
होगा जो अच्छा ही होगा, यह नियम सच्चा ही है।।

भैया ! फरियाद मत कर, धन्यवाद देना सीख। समीक्षा करना सीख तो मेरे जीवन में चार चाँद लग जाएँगे, जीवन चमक जाएगा.... महक जाएगा।

एक मंत्री का स्वभाव था हर हाल में मस्त रहने का। किसी वेदान्ती गुरू का शिष्य होने के कारण उसकी आदत हो गई थी यह सुवाक्य कहने कीः 'भगवान जो करता है अच्छा ही करता है।' प्रत्येक घटित होने पर उसके मुख से उक्त शब्द स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगते थे।

एक बार राजदरबार में पड़ौसी देश के राजा ने तलवार भेंट स्वरूप भिजवाई। मंत्री ने उसे राजा को दी तो राजा उँगली फिराते-फिराते उस तलवार की धार का परीक्षण कर रहे थे। ध्यान अन्यत्र कहीं चले जाने से राजा की उँगली का अगला हिस्सा तलवार की तेज धार से कट गया और रक्त की धारा बह निकली। सभी कर्मचारी हाय-हाय करने लगे लेकिन धन्यवाद और समीक्षा से भरा हुआ मंत्री बोल उठाः "वाह ! जो भी हुआ, अच्छा ही हुआ है।"

राजा पूछता हैः "ऐ ! क्या बोलता है ?"

मंत्री कहता हैः "महाराज जो भी हुआ, अच्छा ही हुआ। अच्छा हुआ, भला हुआ।"

राजा पूछता हैः "ऐ ! क्या बोलता है ?"

मंत्री कहता हैः "महाराज ! जो भी हुआ, अच्छा ही हुआ। अच्छा हुआ, भला हुआ।

राजा सुनते ही आग-बबूला हो उठा। उसने कहाः "मेरी उँगली कट गई और तू कहता है अच्छा हुआ ? ठहर ! अभी दिखाता हूँ तुझे।" राजा ने सिपाहियों को आदेश देकर हथकड़ियाँ पहनकर मंत्री को जेल में बन्द करवा दिया। राजा जेल में जाकर मंत्री से पूछता हैः "मंत्री ! बोल, अब कैसा हुआ ?"

मंत्रीः "महाराज ! यह भी अच्छा हुआ, भला हुआ।"

मंत्री की यही बात पुनः सुनते ही राजा पैर पटकता हुआ वापस लौट गया। समय बीता। राजा की उँगली जितनी कटनी थी, कटकर शेष ठीक हो गई।

एक बार राजा जंगल में शिकार खेलने गया और रास्ता भूलकर जंगल में उलझ गया। उधर जंगली लोगों के मुखिया ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया था जिसकी पूर्णाहूति के लिए उसके याज्ञिक ने एक आदमी लाने को कहा ताकि पूर्णाहूति में बलि दी जा सके। यह उस युग की कथा है जब समाज में मनुष्य तक की बलि दी जाती थी। मनुष्य इस हेतु वैसे ही पकड़कर बेच दिये जाते थे जैसे कि इस युग में जंगली लोग पशु आदि पकड़कर बेच देते हैं।

मुखिया के यज्ञ की बलि के लिए आदमी की तलाश में गये जंगली लोगों ने रास्ता भटके राजा को पकड़ लिया और अपने कबीले में लाकर उसे स्नान करवाया, माला पहनाई और ठीक उसी तरह अच्छा-अच्छा माल खिलाया जैसे कि मुसलमान लोग बकरा-ईद के पहले बकरे को खिलाते हैं। राजा की दिन भर की भूख तो उस भोजन से मिटी लेकिन अब तलवार की तैयारियाँ हो रही थीं।

याज्ञिक ने आज्ञा दीः "बलि चढ़ने वाले पुरूष को लाया जाये।" राजा को पकड़कर बलि स्थल की ओर लाया गया। याज्ञिक ने सोचा कि कहीं यह आदमी खंडित तो नहीं है। अन्यथा खंडित आदमी की बलि से यज्ञ भी खंडित हो जाएगा।"

जाँच करने पर राजा की उँगली कटी हुई पाई तो खप्पड़ मारकर उसे भगा दियाः "धत्त तेरी ! हमारी मिठाइयाँ फालतू गई।"

राजा सोचता हैः "अच्छा हुआ। यदि उँगली कटी हुई न होती तो अभी मेरा सिररूपी नारियल ही स्वाहा हो जाता।" उसे मंत्री की बात का यहाँ अनुभव हुआ। मन ही मन मंत्री को धन्यवाद देते हुए वह जंगलों में उलझता-सुलझता अन्त में अपने राज्य में पहुँचा और तुरन्त आदेश दियाः "उस मंत्री को बाइज्जत बरी कर वस्त्रालंकारों से सुसज्ज कर शाही ठाठ से रथ में बिठाकर मेरे सामने पेश किया जाय।"

मंत्री को लाया गया तो राजा कहता हैः "मंत्री जी ! तुमने मेरी उँगली कटते समय कहा था कि अच्छा हुआ, भला हुआ। वह बात मुझे अब समझ में आई। यदि उँगली नहीं कटती तो मेरा सिर ही कट जाता। लेकिन मैंने तुम्हें जेल में डलवाया तब भी तुमने यही कहा था यह मेरी समझ में नही आया। जेल में इतना दंड भोगने को तुमने अच्छा क्यों बताया ?"

मंत्रीः "राजन ! आपकी कहानी सुनकर सिद्ध हुआ कि जेल में रहना अच्छा ही हुआ क्योंकि मैं आपका खास आदमी हूँ। आप जंगल में उलझ गये तो मैं भी आपके साथ होता या आपकी तलाश में पीछे-पीछे आता। आप तो अपनी कटी हुई उँगली के कारण बच गये लेकिन मेरा तो सिर वे काट ही देते।"

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में कितनी भी बड़ी समस्या खड़ी हो जाये, धैर्य नहीं छोड़ें। उस समस्या की गहराई में परमेश्वर की कृपा की समीक्षा करें। दुःखों में भी ईश्वर की कृपा का दर्शन करें। वे लोग कायर हैं, उनकी यह नासमझी और कायरता की पराकाष्ठा है कि जो दुःख-बाधा आने पर आत्महत्या की सोचते हैं या आत्महत्या करते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला

भगवान श्रीरामचन्द्रजी युद्ध के दौरान जब नागपाश में बँध गये तो नारदजी 'नारायण-नारायण' करते हुए वैकुण्ठ में गरूड़जी के पास पहुँचे और कहाः "तुम कैसे सेवक हो ? स्वामी तो नागपाश में बँधे हुए हैं और तुम इधर घूम रहे हो ! जाओ, प्रभु की सेवा करो।"

जिनके पंखों की आवाज से सामवेद की ऋचाएँ निकलती हैं, ऐसे गरूड़ देवता पंख फड़फड़ाते हुए आये तो कई नाग तो उनकी ऋचाओं के आन्दोलनों से डरकर भाग गये। शेष रहे नागों को गरूड़ जी ने अपनी चोंच से रवाना कर दिया। प्रभु बँधनमुक्त हुए।

प्रभु तो लीला कर रहे थे लेकिन सेवक के भीतर अहंकार घुस गया कि अगर मैं नहीं आता तो श्रीरामजी को नागपाश से कौन छुड़ाता ? अपने इष्ट, अपने उद्धारक के प्रति अहोभाव होता है तो उन्नति होती है लेकिन तर्क-वितर्क से अहोभाव यदि घटता है अथवा दोष-दर्शन होता है तो पतन होता है, फिर चाहे गरूड़जी भी क्यों न हों।

वैकुण्ठाधिपति के नित्य दर्शन करने वाले गरूड़जी भी मोहग्रस्त होकर अशांति का शिकार हुए हैं और अशांति का उपचार किसी वैद्य, हकीम या डॉक्टर के पास नहीं होता। स्वर्ग के राजा इन्द्र भी अशांत होने पर आत्मशांति की तलाश में ब्रह्मवेत्ताओं के चरणों में जाते हैं। गरूड़जी ब्रह्मवेत्ताओं के शिरोमणि भगवान शंकर के चरणों पहुँचे हैं- "प्रभु ! मुझे बड़ी अशांति हो रही है।"

शिवजी पूछते हैं- "अशांति का कारण क्या है ? यह कब से हुई ?"

गरूड़जीः "जबसे राम जी को नागपाश से छुड़ाया तब से। मुझे संदेह हुआ कि ये साक्षात् नारायण कैसे हो सकते हैं ? मैं न आता तो उन्हें कौन छुड़ाता ?"

शिवजीः "तेरी अशांति की दवा मैं नहीं दूँगा। तूने अपने इष्ट के प्रति, अपने उद्धारक के प्रति अश्रद्धा की है। आखिर तू पक्षी जो ठहरा ! तू पक्षपात करता है, अपने अहं की तरफ आता

है। अरे ! तेरे भीतर जो समतत्त्व काम कर रहा है उस पर तेरी नजर नहीं गई ? तू सोचता है 'मैंने अपनी चोंचों से काम किया।" अरे.... तेरी चोंच किसकी सत्ता से चलती है पागल ! तुझे पता नहीं ? तेरे पंख किसकी सत्ता से फड़फड़ाते हैं ? उसे तू नहीं जानता ?

रमन्ते योगिनः यस्मिन् सः रामः।

रोम रोम में रमने वाले जिस चैतन्य आत्मा में योगी लोग रमण करते हैं, वह राम है। ......और उनका नागपाश तूने तोड़ा ? राम की सत्ता से तेरे पंख चल रहे हैं और तूने राम की मदद की ?"

हम लोग भी तो यही कर रहे हैं। "हमने भगवान की सेवा की.... हमने बेटे की सेवा की।" किसकी सत्ता से की यह सेवा ? "हमने गुरू की सेवा की.... हमने साधकों की सेवा की.... हमने भक्तों की सेवा की....।" साधक बोलेंगेः "हमने फलानों की सेवा की....." लेकिन तुम जिसकी निरन्तर सेवा ले रहे हो उसका तो ख्याल करो, भाई !

जब हम विराट स्वरूप को नहीं देखते हैं तो क्षुद्र अहंकार आ जाता है। जब उसकी करूणा और कृपा की तरफ नजर नहीं होती तो अपनी वासना और अहंकार में हम बँध जाते हैं। फिर चाहे वह धन का अहंकार हो, कुर्सी का हो, सौन्दर्य का हो चाहे बल का अहंकार हो लेकिन उस विराट के आगे यह गौण है।

कई लोग शराब का सेवन करते हैं जिसमें निहित अल्कोहल से मनुष्यों की मति इतनी आक्रान्त हो जाती है कि वे कह उठते हैं-

"भगवान-वगवान को हम नहीं मानते। भगवान होते तो संसारी इतने दुःखी क्यों होते ?"

अरे नादानों ! दुःख भगवान के कारण नहीं, तुम्हारी वासना और स्वार्थ के कारण बना है। जिसने वासना और स्वार्थ को जितने अंशों में मिटाया है उतना ही भगवान का प्रसाद और आनन्द उसने पाया है। तुम भी पा सकते हो।

आज के नास्तिकवाद ने, अहंकारवाद ने, वासनावाद ने, मनुष्य को इतना उलझा दिया है कि वह भगवान की सत्ता को अस्वीकार कर अपनी सत्ता थोप रहा है क्योंकि वह यह भूल चुका है कि पानी की एक बूँद से उसके शरीर का निर्माण हुआ है और राख की मुट्ठी भर ढेर में उसकी लीला समाप्त हो जाती है। इसका आदि देखो और अन्त में देखो, बीच का तुम कब सम्हालोगे, भैया !

किसी धनवान ने कहीं दान किया तो वह ढिंढोरा पीटेगा कि मैंने इतना दिया है। अरे भैया ! तू यह सब लाया कहाँ से है ? जरा विचार तो कर ! यह तो उसकी कृपा है कि तेरे माध्यम से वह यह सत्कर्म करवा रहा है। फिर क्यों तू अहंकार सजा रहा है ? भगवान की इस कृपा को भी तू अहंकार पोसने के उपयोग में ला रहा है ? अहंकार मिटाने की बात कर और ईमानदारी से खोज.... कल्याण हो जायेगा।

हम वाह-वाही व विकारी सुखों को जितना कम महत्त्व देंगे उतना अधिक हम भगवान की अनन्त कृपा का, अनन्त प्रसाद का, अनन्त सुख का, अनन्त जीवन का दर्शन करने के अधिकारी हो जाएँगे।

सुन्दर नाक बनाई है, सुन्दर चेहरा मिला है तो बार-बार देखते रहते हैं काँच में कि मैं कैसा लग रहा हूँ ! उस समय मन में कह दो किः "पानी की एक बूँद का ही रूपान्तर है यह शरीर। अब सोचः तू कैसा लग रहा है ? श्मशान की संपत्ति है यह शरीर। अब सोचः तू कैसा लग रहा है ?"

मनुष्य अगर थोड़ा-सा भी विवेक से सोच ले तो फिर न तो सौन्दर्य का अहंकार टिक सकता है न सत्ता का, न धन का अहंकार टिक सकता है और न ही बुद्धिमत्ता का। इस अहंकार ने हमको विराट से अलग कर दिया है। जैसे कि गंगा की धारा से अलग हुआ पानी किसी गड्डे में पड़ा रहे तो कुछ दिन बाद वह बदबू मारने लगता है। जिस पर मच्छर भी मंडराते रहते हैं। भले ही वह गंगाजल हो लेकिन वैदिक कर्मकांड के उपयुक्त नहीं माना जाता। ऐसे ही उस विराट परमेश्वर की धारा से छूटकर अंतःकरण में, शरीर में व क्रियाओं में आबद्ध होकर मनुष्य इच्छा-वासना का गुलाम बनकर तुच्छ हो गया है। तुम जहाँ से स्फुरे हो उधर का अनुसंधान कर लो तो तुम अभी ही महान् हो जाओगे।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या? तू ब्रह्म का ही अंश है।

एक बुलबुला अपने को बड़ा मानता है दूसरे बुलबुले के आगे। एक तरंग दूसरी तरंग के आगे अपना महत्त्व प्रतिपादित करने में लगी है। दोनों बेवकूफ हैं। दोनों अपने से बड़ों को देखकर सिकुड़ रहे हैं। बड़ा बुलबुला अपने से बड़े बुलबुले के आगे सिकुड़ता है। बड़ी तरंग अपने से बड़ी तरंग के आगे सिकुड़ती है। सिकुड़ना भी बेवकूफी है, अकड़ना भी बेवकूफी है। दोनों की जिगरी जान तो जल ही जल है। वास्तव में सब परमात्मा ही परमात्मा है, चैतन्य ही चैतन्य है। उसका अनुसंधान कीजिये, उसकी करूणा-कृपा का एहसास कीजिये।

जब तुम किसी वस्तु, व्यक्ति या पद के अहंकार से आबद्ध होते हो तो तब उन वस्तु, व्यक्ति या पद से प्रकृति तुम्हें परे हटाती है। जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिए.... .जो भरोसा परमात्मा पर करना चाहिए वह प्रेम और भरोसा जब तुम इन ऐहिक चीजों से करने लगते हो तो ठुकराये जाते हो, गिराये जाते हो, हटाये जाते हो या धोखा खाते हो। जैसे किसी व्यक्ति से आपकी प्रीति अधिक है तो आपके और उसके बीच खटपट हो ही जाती है। होनी ही चाहिए क्योंकि इसी में आपका मंगल है। परमात्मा के इस मंगलमय विधान को हम नहीं जानते इसलिए दुःखी होते हैं। परमात्मा कभी अनुकूलता, सुविधा और यश दिलाकर हमारा विषाद दूर करता है - यह भी उसका मंगलमय विधान है और कभी प्रतिकूलता या व्यवधान उत्पन्न कर हमारी आसक्ति और अहंकार दूर करता है लेकिन हमें इसका ज्ञान नहीं है इसलिए हम परेशान हो रहे हैं कि भगवान ने ऐसा क्यों किया?

शिवजी ने गरूड़जी की बात सुनकर इन्कार कर दियाः "मैं तुझे आत्मशांति का उपदेश नहीं दे सकता क्योंकि जिसके यहाँ सदा सिर झुकाया, उस अपने इष्ट के प्रति तू गलत भाव लाया। मैं तुझे उपदेश नहीं देता। जा काकभुशुण्डिजी के पास जा।"

शिवजी ने कितनी सुन्दर सजा दी है ! कहाँ तो पक्षियों का राजा गरूड़, जिसके पंखों से सामवेद की ऋचाएँ निकलती हैं और कहाँ पक्षियों में अत्यन्त निम्न जाति कौआ ! उस कौए की योनि में काकभुशुण्डिजी का प्राकटय हुआ है। गरूड़ जी को काकभुशुण्डिजी के पास भेजा गया है। जैसे चक्रवर्ती सम्राट को चपरासी के चरणों में भेज दिया जाये तो उसके लिये यह सजा पर्याप्त है। ऐसे शिवजी ने आज्ञा दीः "काकभुशुण्डिजी के पास जाकर अनुरोध करो। उनके उपदेशों से तुम्हारा मोह दूर होगा।"

'मोह' यानि जो वस्तु जैसी है वैसी न जानकर उल्टा जानना। संस्कृत में इसे 'मोह' कहा जाता है।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।

संस्कृत में हृदय की शुद्धि को, अंतःकरण की शुद्धि के प्रसाद कहा जाता है। उस प्रसाद से सारे दुःख दूर हो जाते हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

'प्रसन्नता होने पर साधक के सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है और ऐसे प्रसन्न चित्तवाले साधक की बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है।'

(श्रीमद् भगवदगीताः 2.65)

आपका आहार, व्यवहार, प्राणायाम, जप, तप, ध्यान, पुण्य आदि सबके सब अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए हो। अन्तःकरण शुद्ध होने से प्रसाद होता है और प्रसाद से, प्रसन्नता से सारे दुःख सदा के लिए मिट जाते हैं। इसीलिए सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति मानी जाती है।

सुख की आशा से और वस्तुओं पर अधिकार जमाने से अपना अन्तःकरण अशुद्ध होता है लेकिन सुख की लालच त्यागने से तथा वस्तु जिसकी है उसकी मानकर, उसका सदुपयोग करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। इसी प्रकार प्रेम तथा मोह में भी अन्तर है। प्रेम दिया जाता है, बदले में कुछ इच्छा नहीं होती जबकि मोह बिना बदले के करवट नहीं बदलता। जैसे माँ बच्चे का पालन-पोषण प्रेम से करती है तो वह मोह नहीं है। 'बच्चा बड़ा होकर, पढ़-लिखकर मुझे बहुत सुख देगा....' ऐसा मोह रखकर अगर बच्चे का पालन-पोषण किया जाता है तो फिर बच्चे से जो आशाएँ की जाती हैं, वे पूर्ण नहीं होतीं। यदि मोहरहित प्रेम से बच्चे का पालन-पोषण किया गया

है तो वह बच्चा बड़ा होकर उम्मीद से अधिक सेवा कर सकता है। कदाचित् न भी करे तो भी दुःख नहीं होगा।

निज स्वार्थ में लिप्त होकर किया जानेवाला कार्य मोह है और सेवा समझकर, नियति समझकर किया जाने वाला कार्य प्रेम है। इसी प्रेम से परमात्मा प्रसन्न होते हैं और प्रकट भी होते हैं जबकि मोह के कारण परमात्मसुख, परमात्मशांति से हम परे हो जाते हैं और विकार, अशांति आदि प्रकट होते हैं।

स्त्री के शरीर से मोह करोगे तो उसमें मौजूद अन्तरात्मा नहीं दिखेगा, बल्कि हाड़-माँस दिखेगा और उससे स्त्रीसुख लेने की इच्छा प्रबल होगी। यदि पुरूष ऐसा करता है तो वह स्त्री का गहरा शत्रु है। दोनों भले ही आपस में मित्र हों लेकिन वास्तव में एक-दूसरे के खतरनाक शत्रु होते हैं।

खूंखार शत्रु तो चाकू दिखाकर एक बार हानि करेगा लेकिन ऐसे मित्र तो बिना चाकू दिखाए अनगिनत बार हानि करते रहते हैं। ऐसे ही खुशामद-चाटुकार किस्म के लोग- 'वाह भाई वाह ! वाह सेठ वाह !' करते हैं और सेठ भी भ्रमित हो जाता है कि मैं सेठ हूँ क्योंकि असली सेठ को वह भूला हुआ है। इसलिए अहंकार करता है कि 'मैं सेठ हूँ।' ऐसा विपरीत देखना मोह है। इसी कारण राजा-महाराजा यशोगान आदि सब करवाकर भी पुण्य कर्मों से जब थोड़ी बहुत बुद्धि खुलती तो देखते थे कि कुछ भी नहीं है। फिर राजपाट से निवृत्त होकर वे भी महापुरूषों के चरणों में पहुँच जाते थे और बुहारी करते, लिपाई करते और अन्य सेवाओं से माध्यम से उनकी करूणा-कृपा धीरे-धीर पचाकर परम पद का, परमात्मशांति का अनुभव कर लेते थे।

आज का आदमी आता है गुरूओं के पासः

"बाबाजी ! मैं बहुत दूर से आया हूँ। मुझे अमुक-अमुक काम करना है, बता दीजिए, 'छू.......' कर दीजिये, ताकि जल्दी काम निपटाकर जल्दी वापस पहुँच जाऊँ।" अरे, अपने को कुछ घिस तो सही भाई ! वासना के संस्कार और अहं को तनिक मिटने तो दे !

'सांई ! मुलाकात दो.... यह करो.... वह करो.....।' छूमंतर के लिए तो किसी जादूगर के पास जाना पड़ेगा। जादूगर स्वयं ही फँसा हुआ है और आपको भी पूरी तरह से अपने जाल में फँसा हो सकता है लेकिन यदि ब्रह्मवेत्ता के द्वार जाना है तो राम जी की तरह जाओ। रामजी गये थे वशिष्ठजी के चरणों में, एकनाथजी गये थे अपने गुरू जनार्दन स्वामी के चरणों में, पूरणपोड़ा रहा था एकनाथ जी के चरणों में, विवेकानंद रहे थे रामकृष्ण परमहंस के चरणों में।

पूर्ण को पाना है तो पूरा अहंकार छोड़ना पड़ेगा।

आज कल तो लोग चलती गाड़ी में ही पूछते रहते हैं किः "बाबाजी ! मैं साधना कैसे करूँ ? आप बता दीजिये मैं क्या करूँ ?"

ऐसी स्थिति में कहना पड़ता है कि योग वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर में आओ। ऐसा कहना तो मुश्किल होता है कि तुम बड़ी गलती कर रहे हो.... शाश्वत का खजाना छोड़कर नश्वर चीजों की ओर भागे जा रहे हो।

आज सब कुछ विपरीत दिख रहा है। जिसके लिए जीवन मिला है उसके लिए हमारे पास तनिक सा भी समय नहीं और जिसे छोड़कर एक दिन मर जाना है उससे उपरामता नहीं। इससे बड़ा मोह और क्या हो सकता है ? यह कैसी ममता है जो छूटती भी नहीं ? इससे बड़ा नशा या बड़ी शराब क्या हो सकती है ? शराबी की शराब तो दो-चार घंटों में उतर जाती है लेकिन हमारी मोह-ममता की शराब अभी तक नहीं उतर रही है।

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां संसार भूतोः उन्मतः।

इस मोहमयी मदिरा को पीकर सारा संसार उन्मत हो रहा है। आप दो चार पाँच पच्चीस हजार ही नहीं, सब लोग पी-पीकर मतवाले हो रहे हैं.....सारे कुएँ में भाँग पड़ी है। कोई विरला ही होगा जो खट्टी दही और घी का घूँट भरकर वमन द्वारा नशा उतार देता होगा। ऐसे ही कोई विरला है जो दृढ़ नियम की दही व ज्ञानमयी साधना का घी लेकर नशा उतार लेता है। संसारी सुख-साधनों को पकड़ने की आशा ने परमात्मा को पकड़ने की योग्यता और परमात्मासुख पाने की योग्यता, दोनों ही नष्ट कर दी हैं। अभी-भी संसारी विकारी सुखों से जितना-जितना आप खुद को बचाते हैं उतना-उतना आत्मिक सुख आपको ध्यान में मिलता ही है।

ध्यान योग साधना शिविरों में तुम सुबह से बैठे रहते हो। अगर विकारी सुखों में तीव्रता होती तो तुम देर तक सत्संग या ध्यान-साधना में बैठकर आनन्द नहीं ले सकते थे और यह आनन्द लड्डू-पेड़े-बर्फियों का नहीं, यह आनन्द ऐहिक वस्तुओं का नहीं, यह आनंद तो अधरामृत है, दिव्यामृत है।

धरति इति धरा।

ग्वाल-गोपियाँ कहते हैं- "कन्हैया ! हमें धरती के विषय-सुख नहीं चाहिए। धरा का सुख नहीं, हमें तो अब 'अधरामृत का पान कराओ।" तब श्रीकृष्ण अपने प्यारों पर बरसते हैं।

"मैं बांसुरी बजाऊँगा, जो अधिकारी होंगे वे ग्वाल-गोपियाँ ही सुन पाएँगे और आएँगे।"

जिन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति स्वार्थबुद्धि से नहीं अपितु प्रेम-बुद्धि से नाता जोड़ा है, श्रद्धा-भक्ति से नाता जोड़ा है, वे ही लोग बंशी की आवाज सुन पाते हैं।

जिन पर खास इनायत होती है उनको ही संदेशा आता है।
वे ही बुलाये जाते हैं, उनको ही पिलाया जाता है।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्वधर्म-निष्ठा

बालक पैदा होता है तब से सात वर्ष की आयु तक उसके स्थूल शरीर की नींव बनती है। सात से चौदह वर्ष की आयु तक भावना केन्द्र विकसित होता है। चौदह से इक्कीस वर्ष की आयु तक उसका अनाहत केन्द्र विकसित होता है।

अगर ध्यान-धारणा के माध्यम से ये केन्द्र रूपान्तरित कर विकसित किये जावें तो घृणा प्रेम में, भय निर्भयता में, अशांति शांति में, स्पर्धा समता में व अहंकार सरलता व सज्जनता में परिवर्तित होने पर जीवन रसमय बन जाता है।

यदि उस रसस्वरूप का अनुभव करने के लिए केवल एक घंटा ही प्रतिदिन ध्यान का अभ्यास किया जाय तो मात्र चन्द दिनों में ही भीतरी शक्तियों का अनुभव किया जा सकता है। आप चाहे किसी भी जाति, धर्म या मजहब के हों लेकिन आपकी सुषुप्त शक्तियों को जागृत करोगे तो आपका जीवन स्वयं के लिए, दूसरों के लिए, समाज, देश एवं विश्व के लिए हितकर हो जाएगा।

विज्ञान के साथ यदि मानवज्ञान नहीं मिला तो विज्ञान संसार को सुन्दर बनाने के बजाए भयानक बना देगा। मनुष्य याने क्या ? **मनसा सिव्यति इति मनुष्यः।** जो मन से उस चैतन्य के साथ संबंध जोड़ सके, अन्तर-आराम, अन्तर-सुख एवं आन्तर-ज्याति को पा सके उसे मनुष्य कहते हैं।

हटा दो निन्दा नफरत को, अगर दुनिया में रहना है।

निन्दा-नफरत से न अपना भला होगा न ही जगत का भला होगा। सहानुभूति व स्नेह, सच्चरित्र व सदाचार, सत्संग और साधनायुक्त जीवन से स्वयं का एवं देश व समाज का भी भला होगा।

जो घोड़ा लगाम न डालने दे उस घोड़े की कोई कीमत नहीं। जो वाष्प बाइलर में संयत नहीं, उससे गाड़ी चल सकती नहीं। जो तार वीणा से कसी न जाएगी, उससे गीत निकलेंगे नहीं। जो नदी किनारों को लांघ जायेगी वह भयानक हो जायेगी। जो नदी किनारों से बँधी हुई चलती है वह गाँवों को सींचती है और देर सवेर सागर से मिलती है। ऐसे ही हमारी मति साधना और संयम से जुड़ी होगी तो रूपान्तरित होगी, विकसित होगी। वे ही वृक्ष फूलते हैं, फलते हैं, रस देते हैं जो धरती से जुड़े होते हैं। जो वृक्ष धरती से जुड़ना नहीं चाहते, धरती से अपना संबंध तोड़कर उछलना कूदना चाहते हैं वे असंयमी वृक्ष फूलहीन, फलहीन व रसहीन हो जाएँगे।

ऐसे ही जो मन अपने आत्मा से व चैतन्य से जुड़कर जीता है वह रसीला होता है, सामर्थ्यवान होता है, सदाचारी होता है लेकिन जो मन केवल हिंसा के बल से, आतंक के बल से सुखी होना या ऊँचाई को छूना चाहता है उसका विनाश हो जाता है।

जो औरों को देता शक्कर है, वो खुद भी शक्कर खाता है।

औरों को डाले चक्कर में, वो खुद भी चक्कर खाता है।।
इसे तू दुनिया मत समझ भैया ! ये सागर की मझधार है।
औरों का बेड़ा पार कर तो तेरा बेड़ा पार है।।

स्नेह और सहानुभूति, सत्संग और साधना, मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में सहायक साधन हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा हैः

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भक्तोऽज्ञानमेव च।।

'सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से लोभ आदि ही उत्पन्न होते हैं। तमोगुण से प्रमाद एवं मोह उत्पन्न होते हैं एवं अज्ञान भी होता है।'

(गीताः 14.17)

प्रमाद, मोह और अज्ञान तमस की उपज है। इससे अज्ञान और बढ़ता है। जैसे नाविक नाव को ले जाता है और नाव नाविक को ले भागती है वैसे ही सदाचार से सत्त्वगुण बढ़ता है और सत्त्वगुण से सदाचार बढ़ता है। तमोगुण से दुराचार और दुःख बढ़ता है एवं दुःख से दुराचार और तमोगुण बढ़ता है। इसीलिए अच्छी संगत करो। अच्छे ग्रन्थों व शास्त्रों का पठन करो। अच्छे में अच्छा परमात्मा है। उस परमात्मा से प्यार करो। फिर उस परमात्मा को चाहे राम कहो, रेहमान कहो, ईश्वर कहो, अल्लाह कहो। वही प्राणीमात्र के दिल की धड़कन को चलाने वाला दिलबर है। उसे हृदयपूर्वक प्यार करते रहो।

सब घट मेरा साईंयाँ, खाली घट न कोई।
बलिहारी वा घट की, जा घट प्रकट होई।।

उसे प्रगट करने की शैली सरल है, कठिन नहीं। जिन्हें कठिन नहीं लगती ऐसों का मिलना कठिन है लेकिन अगर ऐसे महापुरूष मिल जाएँ और उनके मार्गदर्शन में थोड़ा अभ्यास करो तो आप भी उसके अनुभव में समा सकते हो, अनोखा अनुभव पा सकते हो। संत चाहे किसी भी जाति के हों, यदि उन्होंने ऊँचाई को छुआ है तो उन सबका अनुभव तो एक ही है।

गीता में चार मुख्य विद्याएँ वर्णित हैं-

एक है अभय विद्याः हर आदमी को मृत्यु का भय लगता है लेकिन **वासांसि जीर्णानि** वाला उपदेश देते हुए भगवान ने मृत्यु के भय से पार करने का प्रसाद गीता में भर दिया है। दूसरी विद्या है साम्य विद्याः राग-द्वेष से रंजित होकर चित्त अनर्थ पैदा करता है अतः चित्त की समता एवं राग-द्वेषरहित अवस्था को पाने का उपदेश गीता में है।

तीसरी विद्या है ईश्वर विद्याः ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान। ईश्वर की सत्ता-स्फूर्ति को स्वीकार करके आदमी निरहंकार होता है। अन्यथा अहंकार के बोझ से तो बड़ा दुःख पैदा होता है।

चौथी विद्या है ब्रह्मत्मैक्य बोध विद्या।

गीता की ये चार विद्याएँ जिसने समझ लीं, वह निर्भार हो जाएगा, निरहंकार हो जाएगा, राग-द्वेष रहित होकर, वह मृत्यु के भय से भयभीत नहीं होगा। मौत जिसकी होती है वह 'मैं' नहीं..... जो मरता है वह आत्मा नहीं। ऐसी ब्रह्मविद्या से वह मुक्त हो जाएगा। वास्तव में विद्या वही है जो मुक्ति का अनुभव करा दे।

सा विद्या या विमुक्तये।

ध्यान करने से व्यक्ति का तीसरा केन्द्र विकसित होता है। उससे जो योग्यता मिलती है उसे फिर वह या तो जगत के अनुसंधान में लगाये जैसे आईन्स्टीन ने लगाया, या जगदीश्वर की खोज में लगाये। आदमी इससे उन्नत हो ही जाता है। भाव केन्द्र विकसित होने से कार्यक्षमताएँ बढ़ती हैं, आत्मविचार विकसित होने से मनुष्य आत्मा-परमात्मा के स्वाद में स्थित रहता है। यह मात्र योगियों का ही अनुभव नहीं है, आप भी कर सकते हैं। आपके शरीर में सात केन्द्र हैं- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र, और सहस्रार।

आपका मन जिस समय जिस केन्द्र में होता है, आपके विचार और कर्म भी उस समय उस प्रकार के होते हैं। अच्छे से अच्छा आदमी भी कभी-कभी दुष्कर्म या कुविचार कर लेता है और दुर्जन मनुष्य भी कभी-कभी इतना अच्छा विचार सुना देता है अथवा सत्कर्म कर देता है कि आश्चर्य होता है। इसका कारण यही है कि दुर्जन मनुष्य भी जब उच्च केन्द्रों में आता है तो उसमें सदविचार व सत्कर्म होने लगते हैं। इन केन्द्रों में स्थिति प्राप्त महापुरूषों का यदि सान्निध्य व सम्प्रेक्षण शक्ति प्राप्त हो जाए तो अनेकानेक जादुई अनुभव होते हैं। यह बाहर के जादू की नहीं, भीतर के जादू की बात है।

ऐसी स्थिति निर्मित होने पर घृणा प्रेम में, अशांति शांति में, अहंकार सरलता में और अज्ञान ज्ञान के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि मूलाधार केन्द्र ही विकसित करने की कला आ जाए तो साधक को दादूरी सिद्धि प्राप्त होती है। दूसरा केन्द्र रूपान्तरित होने पर पढ़े बिना ही वेद, वेदान्त, उपनिषद और अन्य शास्त्रों का अर्थ प्रकट होने लगता है। किसी भी शास्त्र को पल भर देखकर ही वह पूरा रहस्य समझ लेगा। वह योगी फिर देवपूज्य हो जाता है, देवता लोग उसकी पूजा करते हैं और यक्ष-गंधर्व-किन्नर उसकी आज्ञा में रहते हैं। लोकलोकांतर की बातें जानना भी उसके लिए कठिन नहीं है। मात्र तीन माह तक निरंतर एक-एक घंटा सुबह-शाम को नियमित ध्यान करो तो अदभुत अनुभूतियाँ होंगी। मैं यह सब कुछ मात्र पढ़-सुनकर नहीं कह रहा हूँ किन्तु मेरे हजारों-हजारों साधकों का अनुभव भी इसके साथ है।

सुत्रा सखणा कोई नहीं, सबके भीतर लाल।
मूरख ग्रंथि खोले नहीं, करमी भयो कंगाल।।

मूर्खता से वह ग्रंथि खुलती नहीं और कर्मी बाहर के ही कर्मों में कंगाल हो रहा है। भीतर का खजाना उसे पता ही नहीं है और जिन्हें उस खजाने का पता है उन महापुरूषों के चरणों में

तो बड़े-बड़े सम्राट भी सिर झुकाने को आतुर रहते हैं। उन महापुरूषों के दर की तो बात ही निराली है !

वो सर सर नहीं जो हर दर पर झुकता रहे।
वो दर दर नहीं जिस दर पर सर ना झुके।।

जिन्होंने आत्मद्वार को पाया है, उन महापुरूषों के दर्शन से हमारा सिर श्रद्धा से झुक जाता है लेकिन जहाँ-तहाँ, ऐरे-गैरे हर आदमी के आगे झुककर घुटने टेकते रहना यह दुर्बल आदमी का काम है। आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी महापुरूषों के आगे मत्था टेकने में तो श्रीराम व श्रीकृष्ण जैसे, जनक और एकनाथ जैसे, सम्राट अशोक जैसे व्यक्तित्व भी अपना अहोभाग्य मानते हैं।

जहाजों को जो डूबा दे, उसे तूफान कहते हैं।
तूफानों से भी जो टक्कर ले, उसे इन्सान कहते हैं।।

आपके जीवन में मनोबल की आवश्यकता है। भक्ति करो, ठीक है.... लेकिन भक्ति के साथ यह बात अवश्य ही ध्यान में रखनी है कि भक्ति करना कोई पलायनवादी का काम नहीं है। भक्त आलसी नहीं होता है, वह प्रमादी, कायर व पलायनवादी नहीं होता है। हनुमानजी का जीवन देखो..... कितना पराक्रम ! कितना बल ! देखो मीरा के जीवन में, कितनी निर्भीकता और सहनशक्ति है ! लक्ष्मणजी का जीवन देखो, कितना अनुशासन व सेवा भक्ति है !

गुरू गोबिन्द सिंह के दोनों बेटे मुगल शासक द्वारा दीवार में चुने जा रहे हैं। छोटा भाई कहता हैः "पहले मुझे चुन लो। हमारा सिर जाए, प्राण जाएँ तो जाएँ लेकिन धर्म नहीं छोड़ेंगे।"

तेरी खिदमत में ए हिन्द ! यह सर जाय तो जाय।
मैं समझूँगा कि यह मरना हयाते जादवाँ मेरा।।
यही पाओगे मेहशर में, जुबाँ मेरी, बयाँ मेरा।
मैं बन्दा हिन्दवालों का हूँ, है हिन्दुस्तां मेरा।।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

अपने सनातन हिन्दू धर्म में मर जाना भी अच्छा है, पराया धर्म भय देने वाला है।

गुरूतेगबहादुर बोलिया।
सुनों सिक्खों बड़भागियां।
धड़ दीजे धरम न छोड़िये।।

ऐसा बल... ऐसी दृढ़ता जीवन में होनी चाहिए।

धर्म मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। एक होता है देह को 'मैं' मानकर व्यवहार करने वाला सामाजिक धर्म और दूसरा होता है अपने तत्त्व स्वरूप में स्थित होने का जीव का वास्तविक आत्मधर्म, स्वधर्म। उदाहरणार्थः कोई माई है, भाई है, ब्रह्मचारी है, वानप्रस्थी है, इनका अपना-अपना बाह्य व्यवहार का धर्म है। आमजनता जिसका पालन कर सके, वह बाह्य धर्म है। अहिंसा, सदाचार, ब्रह्मचर्य, संयम - ये आत्मधर्म हैं, स्वधर्म हैं।

'जीव का वास्तविक स्वरूप क्या है ?' यह चिन्तन करके अपने 'स्व' में टिकना। इसे स्वधर्म कहते हैं। यदि आप भक्त हैं तो अपनी भगवदाकार वृत्ति कीजिये। रामजी का भक्त होगा तो रामाकार वृत्ति होगी, जगदाकार वृत्ति बाधित होगी, वह रामरस को पायेगा। श्रीकृष्ण का भक्त होगा तो वृत्ति कृष्णाकार बनाएगा। काम, क्रोध आदि का प्रभाव घटता जाएगा, वृत्ति कृष्णभगवदाकार बनेगी एवं उसे अंदर का रस मिलेगा। यदि कोई ब्रह्मवेत्ता सदगुरू मिल जाएँ तो वे वृत्ति को ब्रह्माकार बना देते हैं। वृत्तियाँ जहाँ से उठती हैं वह तत्त्व प्राणीमात्र की नींव है, ऐसा ब्रह्मज्ञान जानकर वह स्व में स्थित हो जाएगा, साधक मुक्त हो जाएगा।

साधक का स्वधर्म होता है अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप में टिकना। भक्त का स्वधर्म भगवदाकार वृत्ति करना होता है और संसारी का स्वधर्म होता है अपने कुलधर्म के अनुसार गृहस्थी का यथोचित पालन करना। उदाहरणार्थः तुम गृहस्थी हो और तुम्हारा पड़ौसी आ जाय, चाहे वह तुम्हारा शत्रु ही क्यों न हो, लेकिन घर आ गया तो वह अतिथि है, उसे सत्कार दो, मान दो। शत्रु को मान देने वाले श्रीरामचंद्रजी थे। आपको कदाचित् याद होगा कि जब मेघनाद मारा गया तो श्रीरामचंद्रजी ने अपने अंग का वस्त्र उतारकर दिया कि 'इसको ढँककर ले जाओ और वीरोचित गति करो, उसकी उत्तर क्रिया करो।'

गृहस्थी को चाहिए कि वह अपनी आय का कुछ हिस्सा सत्कर्म में लगाये, अपने समय का कुछ हिस्सा ध्यान-भजन में लगाये। हो सके तो वर्ष में एकाध माह एकांत में रहे। वर्ष के पर्व-त्यौहार आनंद-उत्साह से मनाये। स्वास्थ्य के नियम जानकर संयम से तेजस्वी संतानों को जन्म दे एवं उन्हें गीता के तेजस्वी ज्ञान से अवगत कराये। वानप्रस्थी है तो अपनी पत्नी के साथ एकांत में संयम से रहे।

इस प्रकार अपने-अपने स्वधर्म के पालन में रत रहने से मनुष्य का कल्याण संभव है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बीज में वृक्ष..... जीव में ब्रह्म.....

हम लोग भगवान की कृपा का एहसास नहीं करते जबकि हमारे कदम-कदम पर उनकी कृपा ही काम कर रही है। ऐसा कोई क्षण नहीं कि जिसमें उनकी अहैतुकी कृपा न बरसती हो। अगर उस कृपा का स्वीकार हो जाए तो फिर आप उसका और उसकी कृपा का अनुभव कदम-कदम पर कर पाओगे।

हमारा हृदय ईमानदारी से जितना अधिक सेवापरायण और त्यागप्रधान होता है, उतना ही भगवान की कृपा का प्रसाद हमारे जीवन में विशेषरूप से आने लगता है।

सन् 1931 की घटना है। गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने भारत से गांधीजी लंदन गये थे। वहाँ आईन्स्टीन भी आये थे। वहाँ इन दोनों में आपस में वार्तालाप हुआ।

आईन्स्टीन ने कहाः "नक्षत्रों, तारों, ग्रहों और ग्रहमंडलों को देखते हुए इस बात को स्वीकारना ही पड़ता है कि ईश्वर जैसा कोई तत्त्व है। इस पृथ्वी पर जो सबका नियमन कर, तालबद्धता देते हुए सबको आकर्षित कर रहा है, वह कोई व्यक्ति या वस्तु नहीं लेकिन इनके बीच का कोई ऐसा तत्त्व है, जिसका वर्णन करना विज्ञान की ताकत नहीं। वह अवर्णनीय है, जिसे कोई God कहता है, कोई सत्य कहता है लेकिन उसको स्वीकारना सबको पड़ता है।"

प्रत्युत्तर में भारत के सज्जन, हर काम में ईश्वर का हाथ महसूस करने वाले, ईमानदार मोहनलाल करमचन्द गांधी ने कहाः

"मिस्टर आईन्स्टीन ! मैं तुम्हारे और मेरे बीच की वार्त्ता को एवं तुम्हारे और मेरे शरीर को भी उसी की लीला समझता हूँ। मैं तो यह मानने को तैयार हूँ कि तुम और हम नहीं हैं लेकिन वह तो है ही। 'मैं-मैं... तुम-तुम' करके हमारे संस्कार ऐसे उलझ गये कि जिसकी सत्ता से और जिससे यह सब हो रहा है यह छुप गया है। 'मैं हूँ' यह जिससे हो रहा है, 'तुम हो' यह जिससे दिख रहा है, वास्तव में वही है। बाकी 'मैं..... तू.....' तो मन की अवधारणा है। शरीर के ढाँचे हैं और वे 'नहीं' हो जाएँगे। ये नहीं थे तब भी वह था, ये बोल रहे हैं तब भी वह है तथा ये 'नहीं' हो जाएँगे तब भी वह रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है, ऐसी मेरा श्रद्धा है। परंतु अभी मैंने उसका पूरा पता नहीं आया है।"

गांधी जी ने अपने अंतिम दिनों में भी अपने निकटवर्तियों से कहा थाः "वह है। गोलमेज सम्मेलन में मैंने जो प्रवचन दिया था वह विरोधियों को भी अच्छा लगा था। उसमें उस परमेश्वर का ही हाथ था। 'इरविन गाँधी समझौता' में भी जो भाषण हुआ था, उसमें उसी का हाथ था। उद्दण्ड नीति अपनाकर प्रजा का शोषण करने वाले ब्रिटिशों को भगाने में अगर कोई सफलता मिली है तो वह मेरी सफलता नहीं, उसी का संकल्प और उसी की कृपा का प्रसाद है, वरना मैं एक लकड़ीधारी दुबला पतला व्यक्ति कर भी क्या सकता हूँ ?

मेरी बोलने की शैली से प्रभावित होकर हजारों लोग जुड़ जाते हैं तो यह क्या मेरी चतुराई है ? नहीं। यह तो उसी की करूणा का प्रसाद है लेकिन हम नादानी से मान लेते हैं कि 'मैंने किया है.... मैं करता हूँ.... अहं करोमि।' हमारा ज्ञान बहुत अल्प है, इसलिए जगत् के ज्ञान के विषयों को भी हम पूर्णरूप से नहीं जान सकते।

आप बीज को भी पूर्णरूप से नहीं जान सकते, इतना अल्प है आपका ज्ञान। बीज में कितने वृक्ष छिपे हैं यह आप कल्पना भी नहीं कर सकते। एक बीज से कितने बीज..... और कितने बीजों से कितने वृक्ष.... और उनसे कितने बीज और कितने वृक्ष होंगे इसकी आप गिनती नहीं लगा सकते। हम दृश्य की गणना भी पूरी नही कर सकते जो कि इन्द्रियगत ज्ञान के एक

कोने में पड़ा है। मन के एक कोने में इन्द्रियों का ज्ञान छुपा है। मन बुद्धि के एक कोने में है और बुद्धि उस अनन्त के एक साधारण से कोने में है तो वह कैसा होगा ?

वही जब प्रकट होकर अपने आपको दिखा देता है तो यह जीव चिदाकाश स्वरूप हो जाता है, अद्वैत ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह स्थिति अभी मैंने नहीं पाई है। मैं एकांत चाहता हूँ लेकिन लोकसंपर्क बढ़ने के कारण, मेरी बुद्धि उस अनन्त में प्रतिष्ठित हो जाए ऐसी सुविधा मुझे नहीं मिलती। इस हेतु कई बार मैं वर्धा गया लेकिन प्रसिद्धि के कारण लोग वहाँ भी आ जाते थे। अतः अन्तर्मुख होकर एकांतयात्रा करने के लिए तथा अद्वैत निष्ठा दृढ़ करने के लिए मुझे जो समय चाहिए था वह मिल नहीं पाया। फिर भी जो कुछ मिला वह उसका ही प्रसाद है, उसकी करूणा का ही चमत्कार है कि लोग इस 'मोहनलाल' को महात्मा गाँधी कह रहे हैं। अन्यथा मुझमें महात्मापन है ही कहाँ ?"

शेख मेहताब के साथ वेश्या के घर जाने वाला व्यक्ति पिता की मृत्यु के समय भी पत्नी के साथ सोया रहने वाला व्यक्ति भी 'बापू-बापू' करके पूजा जाता है, यह बापूओं के बापू परमात्मा की लीला नहीं तो और क्या है ?

एक साधारण दासी का पुत्र, जिसकी माँ हमेशा एक दो दिन की इधर-उधर की चाकरी किया करती थी। बेटा भी माँ के साथ काम पर जाता था। इस बार माँ को चाकरी मिली थी सत्संग-सभा में सेवा करने की। बेटा भी वहाँ साथ जाता है। छोटी जाति, छोटा कुल और छोटा जीवन है उसका। वह अशिक्षित है। पिता की छाया भी बाल्यावस्था में ही जिसके सर से उठ चुकी है। ऐसे अनाथ दासीपुत्र को सत्संग मिलता है और नाथ से मिलाने वाले कोई संत मिलते हैं तो वही दासीपुत्र देवर्षि नारद हो जाता है, जो भगवान को भी सलाह देने की योग्यता रखते हुए देवताओं की सभा में पहुँचने पर सदा आदर और सम्मान के साथ उचित आसन पाता है।

ईश्वर ने इस जीव में कितनी योग्यताएँ रख दी हैं ! कितनी क्षमताएँ भर दी हैं। बीज में जैसे वृक्ष छिपा है ऐसे ही जीव में ब्रह्म छिपा है। उसको पा लो, जान लो।

इसलिए कभी-भी अपने स्वार्थ में आसक्त नहीं होना चाहिए। व्यावहारिक वासनाएँ पोसने का स्वार्थ व्यक्ति की शक्तियों को कुंठित कर देता है। विषय-विकारी सुख का अभिलाषी कभी सच्ची सेवा नहीं कर सकता। सांसारिक कामनाओं का गुलाम मनुष्य अपना ठीक से विकास नहीं कर सकता। अपने स्वार्थ का गुलाम आदमी अपना कल्याण नहीं कर सकता।

जितना-जितना तुम्हारा हृदय निःस्वार्थ होता है उतनी ही तुम्हारी भौतिक उन्नति होती है। जितना-जितना तुम्हारा हृदय निरंजन को प्रेम करता है उतनी ही तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति होती है। व्यापारी जितना अधिक स्वार्थी होता है ग्राहक उससे उतने दूर भागते हैं, ऊबते हैं। लेकिन व्यापारी जितने अंशों में निःस्वार्थता से भरा है, उतने ही ग्राहक उसके अपने हो जाते हैं। कथाकार जितना स्वार्थ से भरकर सत्संग करेगा, श्रोता उससे उतने ही दूर भागेंगे लेकिन

अपने हृदय में निःस्वार्थता भरकर सत्संग करने वालों के चरणों में तो दिन-प्रतिदिन विशाल जन-समुदाय लोट-पोट होने लगता है।

निःस्वार्थता के बिना विकास संभव नहीं और प्रेम के बिना प्रभु का अनुभव संभव नहीं। अतः इन दोनों को अपने जीवन में उतारो। स्वार्थ से अपनी सेवाओं को तुच्छ मत करो और वासनाओं से अपने जीवन को नष्ट मत करो। करोड़ों जन्मों के मार खाते आये और अभी भी हजारों बार अनुभव किया है कि बाहर के सुखों के पीछे ज्यों अपने को धकेलते हैं, घड़ी भर में ही योग्यताएँ और सुख क्षीण हो जाता है। अतः सुख के लालच से की हुई प्रवृत्ति नहीं, सुख बाँटने के भाव से की हुई प्रवृत्ति आध्यात्मिक विकास का मूल है।

जो सुख लेने के लिए शादी करते हैं वे पति-पत्नी एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं। ऋषिऋण चुकाने के लिए संयम से शादी का उपयोग किया और पति पत्नी के भीतर छुपे हुए परमात्मा के प्रागट्य के लिए एक दूसरे को गिरिजाबाई व एकनाथ अथवा कबीर व लोईमाता की तरह सहयोग दिया तब ही कहीं कमाल एवं कमाली जैसी संतानें आ सकती हैं अन्यथा घर में मुर्गी व बंदरछाप बच्चे आ जाते हैं जो माँ-बाप को तो परेशान करते ही हैं, देश और समाज के लिए भी वे परेशानी खड़ी कर सकते हैं। अपना शरीर और अपना विकार ही स्वयं को परेशान करता है। मनुष्य की यह कैसी दुर्दशा है ? मनुष्य के बच्चे का कितना अपमान है कि वह अपना संयम भूलकर सुख की दासता में सुख-स्वरूप हरि को, सच्चे सुख को विस्मृत कर विकारी सुख में अपने को धकेलता जा रहा है।

ज्यों-ज्यों सांसारिक सुख की ओर गति होगी त्यों-त्यों स्वार्थ बढ़ेगा और ज्यों-ज्यों स्वार्थ बढ़ेगा त्यों-त्यों संसार में संघर्ष बढ़ेगा। जितनी अधिक वासनाएँ उत्तेजित करने वाली फिल्में बढ़ेंगी, उतना ही अधिक जाति, समाज, देश और संसार का विनाश होगा और जितना अधिक संयम-सदाचार का प्रचार होगा, अन्तर्सुख लेने का प्रचार होगा उतना ही अधिक व्यक्ति, जाति, समाज, देश व संसार का कल्याण होगा, उत्थान होगा।

सुख की दासता सत्यस्वरूप परमात्मसुख से दूर रखती है। अतः सुख लेने की चीज नहीं है। यह बात सदैव स्मरण होनी चाहिए। यदि परिवार का प्रत्येक सदस्य सुख लेना चाहता है तो परिवार में कलह रहेगा, सम्मान लेना चाहता है तो भी कलह रहेगा।

राम जी के सेवक हनुमानजी इतने कैसे चमक उठे ? उनमें वाह-वाही की इच्छा नहीं थी। बस अहर्निश सेवा....। बिना सेवा किये रह नहीं सकते थे हनुमानजी। इसी सेवा-भक्ति के कारण ही हनुमानजी की जय बोलते हैं भारतवासी।

राम लक्ष्मण जानकी। जय बोलो हनुमान की।।

जो व्यक्ति अपनी वाह-वाही त्याग कर निःस्वार्थ कर्म करता है उसकी भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति एक साथ होने लगती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग का महत्त्व

सत्संग और सेवा का फल क्या है ? तीर्थस्नान, दान, पुण्य तप, तितिक्षा आदि का फल क्या है ? जैसे दही बिलोने का फल मक्खन दिखने लग जाये, ऐसे ही स्नान, तीर्थ, दान, पुण्य, तप, तितिक्षा आदि का फल यही है कि मन परमात्मा में लग जाए तथा परमात्मा की शांति रूपी मक्खन मिल जाए। सत्संग, सेवा और साधन-भजन का फल यही है कि ईश्वर का रस आने लग जाए, ध्यान का प्रसाद उभरने लग जाए।

जिसके जीवन में वह ध्यान का प्रसाद, सेवा का प्रसाद, सत्संग का प्रसाद प्रगट होता है उसका चित्त छोटी-मोटी बातों से तो क्या, स्वर्ग के सुख से भी चलित नहीं होता। अगर आदमी की सेवा फल गई है, सत्संग फलित हो गया है, ध्यान फलित हो गया है, परमात्मा की भक्ति और ज्ञान फलित हो गया है तो उसके अन्तःकरण में जो शांति और आनंद फलता है, उसके आगे स्वर्ग का सुख भी कुछ नहीं लगता है।

शुकदेव जी महाराज परीक्षित को सत्संग सुनाने जा रहे हैं तो देवता लोग प्रार्थना करते हैं कि सत्संग-सुधा हमें ही पिला दो। बदले में हम परीक्षित को स्वर्गामृत दे देंगे। लेकिन शुकदेव जी ने यह कहते हुए देवताओं को सत्संग सुधा पिलाने से इन्कार कर दिया कि स्वर्गामृत पीने से अप्सराएँ मिलती हैं और पुण्य नष्ट होते हैं, जबकि सत्संग का अमृत पीने से पाप नष्ट होते हैं और परमात्मशांति की प्राप्ति होती है।

वे महापुरूष श्रीमद् भागवत कथा करते-करते बरसते जा रहे थे अपने प्यारे शिष्य परीक्षित पर। परीक्षित को सात दिन में जो मिला है..... वाह.....! वाह....!! धन्य हैं ऐसे गुरू और धन्य हैं ऐसे शिष्य ! परीक्षित को मात्र सात दिन में पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया।

जिन-जिन पर गुरू बरसे हैं और जो-जो गुरूओं को झेलने वाले सत् शिष्य हुए हैं उन्होंने तो इस धरती पर आश्चर्य को आश्चर्यचकित कर दिया है।

आश्चर्य को भी आश्चर्य हो जाए, दुनिया के सब धर्मग्रन्थ रसातल में चले जाएँ, सारे मठ-मंदिर पाताल में चले जाएँ फिर भी यदि मात्र एक भी ब्रह्मज्ञानी संत धरती पर हैं और एक ही सत्शिष्य है तो धर्म फिर से पनपेगा क्योंकि ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरूष की वाणी शास्त्र होती है। ऐसे पुरूषों ने ही शास्त्र बनाये और उन्हीं शास्त्रों को पढ़ सुनकर आर्टिस्टों ने कल्पना की और भगवान की तस्वीर बनाई। उन्ही तस्वीरों को देखकर शिल्पियों ने भगवान की प्रतिमाएँ बनाई जिन्हें हम लोग पूजकर अपना मन पावन कर सकते हैं।

जिनके हृदय में धर्म प्रकट हुआ है, हृदयेश्वर प्रकट हुआ है ऐसे पुरूष आत्मा-परमात्मा को छूकर बोलते हुए अपने शिष्यों को अथवा समाज को जो धर्म का अमृत पिलाते हैं, वह शास्त्र बन

जाता है। मीरा ने जो पद गाये थे, वे ही पद अभी लता मंगेशकर गा रही है। मीरा से वह कुछ अधिक मधुर कंठ से गा सकती है और उसके पास आधुनिक साज की व्यवस्था भी है, इसलिए वह अधिक मनोरंजन दे सकती है लेकिन मीरा के गाये पदों से मन की शांति मिलती थी और यहाँ लता के गाने से तो मनोरंजन मिलेगा।

कबीर खास पढ़े लिखे नहीं थे लेकिन अभी भी लोग कबीर पर शोध लिखकर डॉक्टरेट की डिग्री पा लेते हैं। उनको बदले में तीन चार हजार रूपये पगार मिलने की संभावना हो जाती है। आज यदि कबीर जी खुद आ जाएँ तो उन्हें चपरासी की नौकरी भी नहीं मिल सकती क्योंकि वे पाँचवी कक्षा तक भी नहीं पढ़े थे लेकिन कबीर जी पर जो शोध लिखते हैं वे पी. एच. डी. माने जाते हैं, डॉक्टर माने जाते हैं और उनको बड़ी-बड़ी नौकरियाँ मिलती हैं।

अतः जिस-जिसने भी अपने परमात्मप्रसाद को पाया है ऐसे पुरूषों का जीवन कैसा होता है यह भागवत गीता में बता रहे हैं। हम उसका श्रवण करके अपने चित्त को ऐसा बनाकर जल्दी ही ऊँचाई का अनुभव करके कुछ ही दिनों में वहाँ पहुँच सकते हैं जहाँ पहुँचकर कबीरजी बोलते हैं। जिस-जिसने भी गहरी यात्रा की है, फिर भले ही उसे झलक मिली या अधिक, वह ऐहिक दुनिया से तो कुछ विलक्षण ही हो गया है।

कबीरजी उस आत्मा परमात्मा में पहुँचकर बोलते हैं तो उनकी वाणी शास्त्र बन जाती है। नानकजी जो बोले वह गुरूग्रन्थ साहिब बन गया है। श्रीकृष्ण जी जो बोले वह भगवद् गीता बन गई। व्यास जी जो बोले, रामकृष्ण और रमण महर्षि जो बोले वह भी शास्त्र बन गया है। सत्यस्वरूप परमात्मा में जिन्होंने भी विश्रांति पाई है, उनकी वाणी और शास्त्र लोगों के पाप-ताप दूर करने में सक्षम हुए हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

'जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियों का जल चारों ओर से परिपूर्ण समुद्र में आकर मिलता है परन्तु समुद्र अपनी प्रतिष्ठा में अचल रहता है, ऐसे ही सम्पूर्ण भोग-पदार्थ जिस संयमी स्थितप्रज्ञ पुरूष में विकार उत्पन्न किये बिना ही उसको प्राप्त होते हैं, वही पुरूष परम शांति को प्राप्त होते हैं, भोगों की कामना वाला नहीं।'

(गीताः 2.70)

जिसने वह पदार्थ, वह आत्मपद पा लिया है उसकी इच्छाएँ-वासनाएँ खत्म हुईं। फिर भी संसार की चीजें उसके पीछे घूमती हैं। भले ही संसार की सुविधाएँ, स्वर्ग और अतल-वितल के रहस्य उसके सामने प्रगट हो जाएँ फिर भी उस महापुरूष को, उस उत्तम प्रकार के योगी और साधक को इतना सब कुछ होते हुए भी चित्त में विकार पैदा नहीं होता। मनुष्य को ऐसी ऊँची अवस्था प्राप्त हो सकती है।

परम शांति परमात्मा के अनुभव से ही आती है। जितनी-जितनी संसार की तुच्छ कामनाएँ मिटती हैं, उतना ही मनुष्य परम शांति का अधिकारी होता है। जैसे, सूर्योदय होते ही सारा काम अपने-आप होने लगता है वैसे ही परम शांतिप्राप्त पुरूष के मन, बुद्धि, शरीर स्वतः ही सुचारू रूप से व्यवहार करते हैं। व्यवहार की आसक्ति, बोझ और कर्त्तापन को वह नहीं छूता। वह अपने-आप में पूर्ण प्रतिष्ठित होकर पूर्ण शांति पाता है।

संसारी शांतियाँ तीन प्रकार की होती हैं। वे आती है थप्पड़ें मारती रहती हैं और चली जाती हैं। भूख लगी, बड़ी अशांति है। रोटी खा ली तो शांति हो गई। लेकिन चार-छः घंटे बाद वह शांति फिर भाग जाएगी। लड़के को नौकरी नहीं मिल रही है तो बड़ी अशांति है। नौकरी मिल गयी तो शांति है। फिर उसकी शादी करने की अशांति और शादी हो गई तो शांति। फिर... उसके यहाँ संतान नहीं हो रही है तो अशांति। इस प्रकार ये शांतियाँ तो बेचारी आती जाती रहती हैं और इसमें ही जीवन पूरा हो जाता है।

अगर सत्संग और सत्पुरूष की कृपा का प्रसाद मिल जाये तो आदमी परम शांति पा लेता है। परम शांति पाया हुआ पुरूष अचल हो जाता है अर्थात् उसका चित्त और मन फिर सुख-दुःख के थपेड़ों में चलित नहीं होता। संसार की वस्तुएँ उसके चरणों में ठीक उसी तरह खींची चली आती हैं जैसे कि नदियाँ सागर की ओर दौड़ी चली जाती हैं। फिर भी वह अपने चित्त में ज्यों का त्यों रहता है।

वह बहुत ही ऊँची बात है कि भगवान कृष्ण का दर्शन हो जाए, राम जी का दर्शन हो जाये, काली माता का दर्शन हो जाए लेकिन आत्मदर्शन यदि नहीं हुआ तो काम बाकी ही रह जाएगा। राम जी का दर्शन मंथरा, शूर्पणखा, रावण और कुंभकर्ण ने किया था लेकिन रामतत्त्व का साक्षात्कार न होने से वे जीवन्मुक्त नहीं हुए। श्रीकृष्ण के दर्शन कंस, शकुनि और दुर्योधन ने भी किये थे, जिसस के दर्शन उनके कई मित्रों और भक्तों ने किये थे और जिसस जब क्रॉस पर चढ़े थे तो हजारों आदमियों ने तालियाँ बजाई थीं।

जब तक जीव को अपना आत्मदर्शन नहीं होता, तब तक भगवान कृष्ण और माँ काली का भी दर्शन हो जाए फिर भी जीव बेचारा परम शांति नहीं पाता है।

तीन प्रकार का भगवत दर्शन माना गया हैः स्वप्न में भगवान के कृपा प्रसाद से भगवान का दर्शन और बातचीत हो। दूसरा, जैसे हम तुम बातें करते हैं, मिलते हैं, देखते हैं ऐसा दर्शन मध्यम दर्शन कहलाता है। तीसरा, भगवान जिस तत्त्व को पाकर भगवान बने और यह जीव जिसके अस्तित्त्व के कारण जीव है उस भगवत् तत्त्व में जीव विलीन हो जाए, परम शांति को पा ले, इसे परम दर्शन कहते हैं, उत्तम दर्शन कहते हैं।

तोतापुरी गुरू ने रामकृष्ण से कहा थाः "काली से बातचीत कर लेता है, काली का दर्शन कर लेता है लेकिन काली आती है तो तुझे शांति मिलती है और काली के जाते ही तुझे फिर रोना पड़ता है। तू मुझसे ब्रह्मज्ञान ले ले ताकि तुझे अचल शांति प्राप्त हो जाये।"

रामकृष्ण कहते हैः "ठहरो, बाबाजी ! मैं माता जी से पूछ कर आता हूँ।" मंदिर में जाकर उन्होंने माताजी को पुकारा। माता जी प्रकट हुई तो रामकृष्ण कहते हैं-

"माताजी ! गुरू महाराज कहते हैं कि मुझसे ब्रह्मज्ञान का प्रसाद ले ले। तो क्या अभी मुझे उनका शिष्य बनना पड़ेगा ?"

माताजीः "हाँ।"

रामकृष्णः "तो माताजी ! आपके दर्शन का फल क्या ?"

माताजीः "मेरे दर्शन का, सेवा का, दान का फल यह है कि ब्रह्मज्ञानी गुरू तुझे आत्मा-परमात्मा का प्रसाद देने घर बैठे तेरे पास आये हैं। यह मेरे दर्शन का ही फल है।"

भगवान कहते हैं-

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पावस निज सहज सरूपा।।

तीर्थ के स्नान का फल कहो, जप का फल कहो, ध्यान का फल कहो या दान का फल कहो, अगर कोई सत्कर्म विशेष रूप से फलित हुआ है तो वह तुम्हारे हृदय में परम शांति देने के लिए प्रेरक बनकर परम शांति पाने का अवसर उपलब्ध करायेगा। तब तुम समझ जाना कि तुम्हारे कर्मों का परम फल मिल रहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सच्चाई का प्रभाव

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बाबू जब राष्ट्रपति नहीं बने थे, वकालत ही करते थे, तब की बात है। उनके पास कोई सेठ आया और कहने लगाः "हमारे इस केस में सारे कागजात हमारे पक्ष के हैं। आप हमें कुड़की दिलवाकर अमुक विधवा माई की सम्पत्ति हमें दिलवा दीजिए।

डॉ. राजेन्द्र बाबू ने सारे कागजात देखे। वे कुछ धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे अतः कागजात देखने के बाद उन्होंने सेठ को कहाः "तुमने हस्ताक्षर और अँगूठे ऐसे करवा लिये हैं और गवाहों की गवाही भी ऐसी ली है कि दो पाँच सुनवाइयों में सारा केस तुम्हारे पक्ष में हो जाएगा लेकिन उस विधवा माई का सर्वनाश हो जाएगा। उसका पति मर गया है इसलिए तुमने धोखे से उससे यह सब करवाया है, ऐसा मेरा दिल कहता है। मैं तुम्हें यह केस जीतकर दूँगा तो मुझे अच्छी फीस भी मिलेगी, मेरा नाम भी होगा और खोटा पैसा मेरे बच्चों की बुद्धि खराब करेगा, मेरी बुद्धि को भी खराब करेगा। हक का होगा तो जीवन सुखी रहेगा, ना हक का होगा तो देर सवेर ना हक कर देगा। भाग्य में जितना होगा उतना ही टिकेगा, फिर चाहे बेईमानी करो या

ईमानदारी करो। लेकिन ईमानदारी वाला पैसा सुख-शांति देगा और बेईमानीवाला नरकों में ले जाएगा।

इसलिए सेठ ! मैं तो तुम्हें सलाह दूँगा कि तुम ये जाली कागजात फाड़ दो। जो आदमी मर गया है उसने थोड़ा सा लिया होगा और तुमने बढ़ा-चढ़ाकर ब्याज और एक शून्य ज्यादा लगा दी। तुम उस विधवा माई की रोटी छीनते हो। उसके छोटे मासूम बच्चे हैं। तुम्हारे बच्चों को तो बहुत सारा खाने-पीने का है फिर भी यदि तुम उसके बच्चों को खाने से मोहताज रखोगे या वे अनपढ़ ही रह जाएँगे तो तुम्हारे बच्चे पढ़कर भी तुम्हारा शोषण करेंगे। यह कुदरत का नियम है।"

जो औरों को डाले चक्कर में, वो खुद भी चक्कर खाता है।
औरों को देता शक्कर है, वो खुद भी शक्कर खाता है।।

यह संसार का नियम है कि जैसी ध्वनि वैसी ही प्रतिध्वनि। आप जैसा फैंकते हैं वैसा ही घूम-फिरकर आपके पास वापस आता है। आप अपमानयुक्त बोलेंगे तो आपका भी अपमान होने लगेगा। आप दूसरों का शोषण करेंगे तो आपका भी शोषण होने लगेगा। दूसरों का भला सोचेंगे तो आपका भी भला होने लगेगा और दूसरों का बुरा सोचेंगे तो आपका भी बुरा होने लगेगा। दूसरों के लिए पवित्रता सोचिए, मंगल सोचिये फिर भले ही आप दूसरों का मंगल कर सकें या न कर सकें लेकिन जिस अन्तःकरण में मंगल सोचा जाता है उस अंतःकरण का मंगल तो अभी से होने लगता है। दूसरे का बुरा सोचिए और आपके सोचने से उसका बुरा चाहे हो या न हो लेकिन बुरा सोचने से आपका अन्तःकरण को अभी से बुरा होने लगता है। यह कर्म का विधान है। दीक्षा और धर्म आदमी को सावधान करते हैं कि चौरासी-चौरासी लाख जन्मों में भटकने की दुर्वासना भी तेरे पास है, और इन जन्मों के कर्मों को काटने की कैंची 'मति' भी तेरे पास है, अब तू निर्बन्ध हो अथवा उसी कैंची से अपने हाथ काट, पैर काट, आँखें काट, तेरी मर्जी।

जैसे तलवार का उपयोग रक्षा के लिए भी होता है और अपने पैरों पर लगाओ तो वह विनाश का काम भी करती है। ऐसे ही तू अपने सत्कर्मों के कर्मों को काटकर निष्कर्म-सिद्धि को पा ले अथवा अपने कुकर्मों से कर्मों को बढाकर भैंसा, कुत्ता, घोड़ा बनने का काम कर। यह तेरे हाथ की बात है।

इसलिए मनुष्य जन्म में करने में सावधान और होने में प्रसन्न रहना चाहिए। जो कुछ कर्म करते हो उसमें सावधानी बरतो, जो पहले के कर्मों का फल भोगना पड़ रहा है उसे प्रसन्न चित्त से गुजर जाने दो। मनुष्य यदि करने में सावधान और होने में प्रसन्न रहा तो उसका जीवन धन्य हो जाएगा।

हम लोग अभी क्या करते हैं ? करने में सावधान और होने में प्रसन्न नहीं रहते। प्रारब्ध वेग से जो हो रहा है उसमें फरियाद करते हैं और जो किये जा रहे हैं उसमें दीक्षा नहीं है, दिशा नहीं है। जो किये जा रहे हैं उसमें दिशा हो और जो पहले का भोग रहे हैं उसमें समता हो तो

पहले का प्रारब्ध गुजर जाएगा और नया बहुत आनंदमयी हो जायेगा। भविष्य कल्याणमय हो जाएगा और वर्त्तमान भी निर्भीक रहेगा।

राजेन्द्र बाबू ने कहाः "सेठ जी। अगर तुम मेरी यह सलाह नहीं मानते हो तो मैं इन कागजातों में उस माई का पता तुम्हारे सामने ही लिख रहा हूँ। मैं उस माई की ओर से ही वकालत करूँगा और उसके पास यदि पैसे नहीं होंगे तो मैं आर्थिक सहायता भी करूँगा ताकि उसके बच्चों को भूखों न मरना पड़े। अभी भी समय है सेठ ! मान जाओ या फिर जैसी आपकी इच्छा।"

सेठ के ऊपर राजेन्द्र बाबू की सच्चाई का ऐसा असर पड़ा कि उसने वे सारे जाली कागजात फाड़ दिये और ऋण स्वरूप जो राशि (50000 रूपये) उसके पति को दिये थे वह भी दान का भाव रखकर माफ कर दी। सेठ के हृदय में उस समय जिस शांति और आनंद का उल्लास हुआ वह 50000 रूपयों के मिल जाने से नहीं होता। राजेन्द्र बाबू को तो बदले में राष्ट्रपति का भी पद मिला। राजेन्द्र बाबू को तो पता ही नहीं होगा कि मेरे इस सच्चाई के आचरण का प्रभाव ऐसा पड़ेगा कि सिंहस्थ के अवसर पर संतजन भी मेरी कथा करेंगे। भगवान की कथा में उन सज्जन की कथा आ रही है, यह सच्चाई व दीक्षा का ही तो प्रभाव है !

ऐहिक वस्तुओं का परिवर्धन व परिमार्जन करके उपयोग में लाने की कला देने का नाम है शिक्षा लेकिन अन्तःकरण को सुसज्ज कर ऐहिक वस्तुओं के सदुपयोग से सत्य को पाने की व्यवस्था का नाम है दीक्षा।

जीवन में यदि दीक्षा नहीं है तो मनुष्य पशु से भी बदतर हो जाएगा। शिक्षित आदमी के जीवन में यदि दीक्षा की लगाम नहीं होगी तो वह भयानक हो जायेगा। तुमने देखा और सुना होगा कि शेर जंगल में जाता है तो बार-बार मुड़कर देखता है कि पीछे से आकर कोई मुझे खा न जाए। उसको कौन खाता है ? शेर ने तो हाथी के भी मस्तक का खून पिया है फिर भी वह डर रहा है क्योंकि उसका हिंसक मन ही उसे भयभीत कर रहा है। ऐसे ही मनुष्य केवल शिक्षित है, दीक्षित नहीं है वह अपनी मति, वाणी और व्यवहार से किसी की हिंसा करते हुए भी सुख के साधन जुटाएगा। सुख के साधन जुट जाना और सुख होना, दोनों में परस्पर भेद है।

जीवन में यदि दिशा नहीं है तो सुख के साधन अनगिनत हों फिर भी मनुष्य को हृदय में सुख नहीं मिलेगा। सुख की तलाश में वह फिर शराब पियेगा, जुआ खेलेगा और क्लबों में नंगा होकर सुख के लिये नाचेगा लेकिन सुख उसे दो कदम दूर ही दिखाई देगा। जीवन में यदि दिशा (दीक्षा) नहीं है तो भले ही हजार-हजार सुविधा के साधन आ जाएँ लेकिन हृदय में कुछ खटका बना ही रहेगा। दीक्षा ही एक मात्र ऐसी दिशा है जो हृदय के खटके को हटा देती है। सुख के साधन कम हों या अधिक फिर किसी प्रकार की चिन्ता या आसक्ति नहीं होती।

सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः।

सुख आ जाए चाहे दुःख आ जाए, योगी की तो परम गति होती है। आने जानेवाली चीजों में वह आसक्त नहीं होता है अपितु अनासक्त भाव से उनका उपयोग कर लेता है।

उपयोग तथा उपभोग, परस्पर भिन्न अर्थवाले शब्द हैं। आप भोजन करते हैं, यदि स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए भोजन कर रहे हैं तो आप भोजन का उपयोग करते हैं लेकिन मजा लेने के लिए ठूँस-ठूँसकर खा रहे हैं तो आप भोजन का उपभोग कर रहे हैं। यदि आप किसी वस्तु का उपभोग करने के आदी हैं तो वह वस्तु भी आपका उपभोग कर लेगी। उदाहरणार्थः शराबी शराब को क्या पीता है, शराब ही शराबी को पी जाती है। ऐसे ही भोक्ता भोगों का क्या भोगता है, भोग ही भोक्ता को कमजोर कर देते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

हम भोगों को भोग न सके लेकिन भोगों ने हमें भोग लिया। आवश्यकता से अधिक कुछ भी भोगा तो शरीर कमजोर पड़ता ही है। आपकी शक्ति में वृद्धि हो ऐसी एक बात आप समझ लीजिएः शरीर की विश्रांति से, बाहरी भोगों को विस्मृत करने से आप बाहर का सब कुछ भूलकर निद्रा में चले जाते हैं और प्रातःकाल में आप एकदम तरोताजा व ताकतवाले बनकर उठते हैं अर्थात् शरीर के आराम से, नींद से आपकी थकान मिटती है व शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह सबका अनुभव है। ऐसे ही मन के फालतू संकल्प-विकल्प छोड़ देने से मन स्वस्थ व सामर्थ्वान होता है तथा बुद्धि में दीक्षा का प्रभाव आने से बौद्धिक विश्रांति मिलती है जिससे बौद्धिक बल बढ़ जाता है।

शरीर की विश्रांति से शरीर स्वस्थ होता है, मन की विश्रांति से मन स्वस्थ होता है बुद्धि में समता आने से मति में सामर्थ्य आता है। मति का सामर्थ्य परमात्मा का साक्षात्कार करा देता है।

सरल उपाय यह है कि तुम्हारी मति में समता भर दो। ॐ...ॐ....ॐ.... सबमें एक..... ॐ.....ॐ.....ॐ.... सब परमात्मा का स्वरूप.....। थोड़े दिन ईमानदारी से अभ्यास करो। मति में समता आने लगेगी। समता का प्रभाव ऐसा होगा कि आपके शत्रु भी आपकी शत्रुता में सफल नहीं होंगे। मित्र तो आपके मित्र होंगे ही लेकिन शत्रु का हृदय भी आपके लिए सदा झुका रहेगा।

ॐ.... नारायण.... नारायण..... नारायण....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सामर्थ्य का सदुपयोग

ब्रिटिश शासनकाल की बात है। गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में स्थित गिरनार पर्वत पर एक योगी योगसाधना करते हुए अपने योगधर्म में निमग्न थे। उनकी सेवा में एक कोली महिला लगी थी जो बाबा को रोटी सब्जी दे जाती थी। उसका पति आजीविका के लिए कोई व्यवसाय करता होगा। एक दिन अचानक पति का निधन हो गया। फिर वह माई अपनी मेहनत से अथवा कहीं भिक्षा माँगकर भी भोजन लाती और उन योगी की योग साधना में सहयोग करती थी।

उन योगी ने 12 वर्ष तक अपना योगधर्म निभाया। फलतः उनमें अनेक सिद्धियाँ व शक्तियाँ विकसित हुईं। मनुष्य जितना जप, तप, नियम, सत्संग एकांतवास करता है उसकी उतनी ही आत्मशक्ति विकसित होती है, यह स्वाभाविक है। लेकिन व अकेला ही जप-तप करता रहे और सत्संग न करे तो इससे उनका अज्ञान दूर नहीं होता। आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी महापुरूषों के चरणों में बैठने से ही अज्ञान दूर होता है। अकेले व्रत, उपवास, जप तप करना ठीक है लेकिन सत्संग में आकर भगवदाकार वृत्ति करना और अपनी गलतियों को ढूँढकर उन्हें निकालकर अपने शुद्ध स्वरूप को पा लेना, सर्वोच्च विषय है।

उन योगी ने कुछ यौगिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली थी। 12 वर्ष पूर्ण होने पर जाने लगे तो कोली माई ने वितनी कीः "बाबाजी ! मैंने आपकी अथक सेवा की, न दिन देखा न रात, न तूफान देखा न बारिश। आप जा रहे हैं तो मुझे कुछ दे जाइये।"

बाबा ने कहाः "माँग, क्या चाहिए ?"

महिलाः "बाबा ! आपको जो अच्छा लगे, वह दे जाइये।"

बाबाः "अच्छा, बैठ और भगवान का नाम ले।"

वह भगवान का नाम लेती गई और बाबा ने अपनी निगाहों द्वारा शांभवी दीक्षा देते हुए उस पर संप्रेक्षण शक्ति बरसाई तो उस माई की थोड़ी प्राणशक्ति-कुंडलिनी शक्ति जागृत हुई। बाबा ने देखा कि बीज बो दिया है और वह बीज फूट निकला है। उन्होंने कहाः "अब तू सिंचाई करती रहेगी तो योगसामर्थ्य भी आएगा और उससे आगे जाना चाहेगी तो परमात्मा का साक्षात्कार भी हो जाएगा।"

वे योगी तो चले गये। अब उस माई ने गिरनार की गुफा में योगसाधना आरंभ की। सप्ताह में एकबार वह जूनागढ़ में भिक्षा माँगने आती और भिक्षा में मिले आटा-दाल से अपने टिक्कड़ बना अपनी भूख मिटाती। बाकी का सारा समय साधना में व्यतीत करती। ऐसा करते-करते माई ने कुछ समय बिताया। एक दिन उसके मन में आया कि 'मुझे कुछ सामर्थ्य वगैरह मिला भी है कि नहीं ?" मनोबल तो विकसित था ही उस माई का, कुछ छोटे-मोटे प्रकाश, नीलबिन्दु दर्शन इत्यादि अनुभूतियाँ भी हुई थीं लेकिन गुरू जी ने कहा थाः

योग समान बल नहीं। सांख्य समान ज्ञान नहीं।

उसने योग का बल परखने के लिए विचार कियाः "मैं इस झोली और डंडे के साथ हमेशा भिक्षा माँगने जाती हूँ लेकिन अब मुझे जाने की क्या जरूरत है ? मैं अपने योग बल से भिक्षा मँगवाऊँगी।"

उसने डंडे को पकड़कर आड़ा किया और उसमें भिक्षा माँगने का झोला टाँगकर अपनी योगशक्ति का संकल्प उसमें स्थापित किया किः "जाओ ! जिन घरों से मैं आटा-दाल लेकर आती हूँ, उन घरों से भिक्षा लेकर आओ।"

आज्ञा पाकर झोला टँगा हुआ वह डंडा चला। गिरनार की ऊँचाई से जब झोली-डंडा जूनागढ़ की बस्ती में पहुँचा तो लोगों ने आश्चर्यमयी दृष्टि से देखा कि जोगन नहीं आई और उसका झोली डंडा आया है। लोग आश्चर्य से प्रणाम करने लगे।

जिस-जिस घर से झोली में भिक्षा मिलती थी, उन घरों के लोगों ने देखा कि माता जी नहीं आई लेकिन उनके डंडे में लटकता झोला आया है। उनका तो अहोभाव था और जो कुछ आटा-दाल देना था, उस झोले में डाल दिया। यह बात बिजली की नाई पूरे जूनागढ़ में फैल गई और राजा के कानों तक भी बात पहुँच गई।

राजसी पुरूष बड़े चतुर होते हैं। वे देखते हैं कि ऋद्धि-सिद्धि और शक्तिप्राप्त महात्मा है तो उन्हीं के पास जाएँगे अथवा जिसको लाखों लोग जानते-मानते हैं ऐसे लोगों के पास जाएँगे। कोई विरले राजा ही शांति पाने के उद्देश्य से जाएँगे। बाकी तो अधिकाँश राजा या तो ऐहिक लाभ लेने के लिए जाएँगे अथवा तो फिर लोकसंत की लोकप्रियता का लाभ लेने की कोशिश करेंगे।

जो भी हो, उस राजा को भी उस जोगन के प्रति श्रद्धा हो गई। राजा ने जोगन के पास चक्कर लगाना शुरू कर दिया। राज-काज में लाभप्राप्ति के लिए उसने जोगन को पटाने की एक युक्ति खोज ली। उसने कहाः "माता जी ! जिस प्रकार राजा जनक के दरबार में गार्गी पधारी थी और राज्य को पावन किया था, इसी प्रकार आप भी इस युग की गार्गी हैं, माता हैं जगदंबा हैं। आप भी हमारे राजदरबार में पधारने की स्वीकृति देकर तिथि दीजिये।"

माताजी हाँ-ना, हाँ-ना करती रही। अतंतः एक दिन निश्चित हो गया कि जोगन आयेगी राजदरबार को पावन करने के लिए। वह जोगन गुरू कि थोड़ी-सी शक्ति लेकर उन्नत हुई थी किन्तु उसे अभी सत्संग का रंग नहीं लगा था। उसका जोग अभी कच्चा था।

सामर्थ्य आना एक बात है और सामर्थ्य के साथ साथ सत्संग करके 'सत्य क्या ? असत्य क्या ? धर्म क्या ? अधर्म क्या ?" यह समझकर व्यवहार करना दूसरी बात है। शक्ति आ जाना व प्रसिद्धि मिलना पृथक विषय है क्योंकि शास्त्रानुकूल जीने से ही शक्ति बनी रहेगी, शास्त्र-प्रतिकूल जीवन जिये तो शक्ति और सामर्थ्य दोनों ही क्षीण हो जाएँगे।

उस जोगन ने सोचा कि राजा प्रभावित हैं। क्यों न मैं अपनी योग शक्ति से कुछ और भी कर दिखाऊँ ?

ऐसे कई जोगी मेरे भी परिचित हैं जो आकाश में हाथ घुमा दें भभूत निकाल देते हैं। सोने की रिंग निकाल देते हैं। यह कोई हाथ की सफाई नहीं, उनके पास स्थित मानसिक शक्तियों का कमाल है। लेकिन मेरे गुरूदेव ने मुझे तत्त्व दिया है उसके आगे तो वे सारी चीजें मुझे बहुत छोटी लगती हैं। ऐसे जोगियों को मैं जानता हूँ जो अदृश्य हो जाते हैं। ऐसे जोगियों से भी मेरा सम्पर्क था जो हवा पीकर जीते थे। वे मेरे मित्र रहे हैं। 12-12 वर्षों के दो मौन रखें तथा जिनके सामने नर्मदाजी प्रकट हो जाएँ, हनुमानजी प्रकट हो जाएँ, हनुमानजी के साथ गगनगामी उड़ान लेकर वापस आ जाएँ, ऐसे लोगों को मैं जानता हूँ, लेकिन आत्मज्ञान की दृष्टि से जब देखता हूँ तो वे मेरे आगे.....

वे मुझे प्रणाम करते हैं, मेरा अत्यधिक आदर करते हैं। वे लोग जब मुझे प्रणाम करते हैं तो मैं अपने गुरूदेव साँईं श्री लीलाशाहजी बापू की उस करूणा-कृपा को प्रणाम करता हूँ कि मेरे गुरूदेव ! आपने मुझे क्या दे दिया ! आहा...."!

जब तक बिके न थे, कोई पूछता न था।
तुमने खरीदकर मुझे अनमोल कर दिया।।

ब्रह्मविद्या चीज ही ऐसी है किः **स्नातं तेन सर्वं तीर्थम् । दातं तेन सर्वं दानम् । कृतं तेन सर्वं यज्ञम् । क्षणं मनः ब्रह्म विचारे स्थिरं कृत्वा.....** जिसने एक क्षण भी अपना मन ब्रह्मविचार में स्थिर कर दिया है, ब्रह्म-परमात्मा को पा लिया है उसने सारे तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने सारे दान दे दिये, उसने सारे यज्ञ कर लिये। लोग तो गोदावरी में स्नान करने जाते हैं लेकिन वही गोदावरी नारी का रूप लेकर एकनाथजी महाराज की कथा में आती थी। एकनाथजी ने कहाः "माताजी ! मैं खुद ही आपके किनारे सत्संग करने आया करूँगा।"

गोदावरी ने कहाः "नहीं महाराज ! नासिक के कुंभ में लोग गोदावरी माता की जय करके गोता मारकर अपने पाप मुझमें छोड़ जाते हैं। आप जैसे ब्रह्मज्ञानी पुरूष के सत्संग में मैं नारी का रूप लेकर पैदल चलकर आती हूँ। एक-एक कदम चलकर सत्संग में जाने से एक-एक यज्ञ का फल होता है। महाराज ! आप मुझे पहचानकर मेरे निमित्त अनेक तात्त्विक बात बोलते हैं इस कारण 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' का उच्च तात्त्विक ज्ञान लोगों को मिलता है। महाराज ! रास्ते में दुष्ट लोग भले ही मेरा मजाक करें लेकिन दुःखी होना न होना अपने हाथ की बात है। महाराज ! वे चाहे किसी भी नजर से मुझे देखें लेकिन मेरी अपनी जीने की नजर है जो मुझे आपके सत्संग में मिली है।"

कोई आदमी चाहे आपको कुछ भी, कैसा भी कहे, लेकिन अपनी अक्ल यदि आप समता का प्रसाद पाये हुए हैं तो लोगों के उलाहने देने से आप दुःखी हो या सुखी नहीं हो सकते हैं। जो अल्प मति के होते हैं, वे दूसरों के चढ़ाने से चढ़ जाते हैं, उतारने से उतर जाते हैं, उनका जीवन जर्मन-टॉय की तरह होता है। लेकिन जो ज्ञातज्ञेय होते हैं, सत्संगी व सगुरे होते हैं और

आत्मवेत्ता सदगुरू के पक्के शिष्य होते हैं वे जानते हैं कि जितनी निन्दा घातक है, उतनी ही स्तुति भी घातक है। जितना अपमान घातक उतना ही मान घातक है।

मान पूड़ी है जहर की खाये सो मर जाये।
चाह उसी की राखता, वो भी अति दुःख पाए।।

गोदावरी मैया कहती हैः

"महाराज ! 'चाह मात्र दुःख है' - यह आपकी कथा से जाना है, इसलिए मैं चाहरहित चैतन्य में रमण करने के लिए आपके चरणों में आती हूँ।"

जो एकनाथ जी की निन्दा करते थे उन चाँडाल चौकड़ी के लोगों को भी आश्चर्य हुआ कि इस बाबा के सत्संग में हम तो आलोचनात्मक दृष्टिकोण से गये थे, कुभाव से गये थे फिर भी गोदावरी माता के दर्शन हुए। यदि अच्छे भाव से जाते तो हमें भी आत्मा परमात्मा का रस मिल जाता। एकनाथ जी महाराज के चरणों में वे लोग नतमस्तक हुए और अपने सजल नेत्रों से उन्होंने एकनाथ जी के चरणों का अभिषेक कर दिया।

एकनाथजी तो संत पुरूष थे। उन्होंने उन पतितों को भी गले से लगाकर उद्धार कर दिया। एकनाथजी से वे लोग इसलिए चिढ़ते थे कि एकनाथजी का सत्संग सुनकर जनता वहमों से, टोटके, डोरे-धागों के बंधनों से निकल चली थी इस कारण जो लोग 'अला बाँधूं.... बला बाँधूं.... प्रेत बाँधूं.... डाकिनी बाँधूं..... शाकिनी बाँधूं..... हूर्रऽऽऽ...... फूर्रऽऽऽ..... कन्या-मन्या कूर्रऽऽऽ..... ले यह ताबीज..... ले यह धागा....' के धंधे में लिप्त थे उनका धंधा बन्द हो रहा था।

सच्चे संत समाज में आते हैं तो समाज में शांति मिलती है, ज्ञान फैलता है, प्रेम का विस्तार होता है और वहमों से एवं ठगे जाने वाले आकर्षणों से समाज सावधान हो जाता है। ऐसे संत जब समाज में आते हैं तो समाज का शोषण करने वालों को तकलीफ होती है। कबीर जी और एकनाथ जी के लिए लोगों ने ऐसे कई षडयन्त्र रचे लेकिन बदले में इन महापुरूषों ने कोई दुःखद प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

जिसने दिया दर्दे दिल उसका प्रभु भला करे।
आशिकों को वाजिब है कि यही फिर से दुआ करे।।

मीरा के लिए भी लोगों ने क्या नहीं किया ? मीरा के देवर ने विद्यालय के बच्चों व अध्यापकों तक को सिखा दिया था कि मीरा के लिए ऐसा-ऐसा प्रचार करो। दीवारों पर लिख दिया जाता था कि मीरा ऐसी है.... वैसी है....। फिर भी लिखने वाले कौन से नर्क में होंगे, भगवान जानें, पढ़कर निन्दा करने वाले न जाने किस अशांति की आग में जलते होंगे लेकिन मीरा तो मालिक से मिलकर तर गई। लोग अभी भी मीरा के नाम से भजन गाकर दो-दो घंटे के प्रोग्राम के तीस-तीस हजार रूपये कमा रहे हैं- **"ऐसी लागी लगन.... मीरा हो गई मगन...."**

उस जोगन ने सोचा किः "मैं जाऊँ तो सही लेकिन जैसे गार्गी राजा जनक के दरबार में दिगम्बर होकर गयी थी उसी तरह दिगम्बर होकर जाऊँ।" गार्गी तो आत्मज्ञानी थी लेकिन इस

जोगन ने योग की थोड़ी सी ही सिद्धि पाई थी। अगर चपरासी तहसीलदार हो जाए तो दूसरे चपरासियों की अपेक्षा वह बड़ा साहब है लेकिन राष्ट्रपति के आगे तो वह बहुत छोटा है। ऐसे ही साधारण आदमी में से कोई यदि कुछ योगशक्ति प्राप्त कर ले तो साधारण आदमी की अपेक्षा तो वह बड़ा है लेकिन साक्षात्कारी ब्रह्मज्ञानी महापुरूषों के आगे तो वह बच्चा है।

ऐसे कई बच्चे मेरे मित्र हैं, जिनकी साठ-साठ वर्ष की उम्र व 24-24 वर्षों का मौन है लेकिन आज भी मुझे अत्यधिक आदर से नमन करते हैं। हालाँकि उनकी उम्र से तो मेरे शरीर की उम्र छोटी है, उनके मौन से मेरा मौन बहुत छोटा है, लेकिन मेरे गुरूदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ने मुझे जो तत्त्वज्ञान का प्रसाद दिया है, उसकी ऊँचाई का मुकाबला तो कोई भी दर्जा नहीं कर सकता है।

उदाहरणार्थः बैलगाड़ी की मुसाफरी 50 वर्षों की हो और हवाई जहाज की मुसाफरी मात्र 50 घंटों की हो तब भी बैलगाड़ी अमेरिका की यात्रा नहीं करवा सकती जबकि हवाई जहाज तो अमरिका दिखाकर 50 घंटों में वापस भारत में छोड़ सकता है। इसी प्रकार कुछ ऐसे विहंग साधन होते हैं जो शीघ्रता से इस जीव को ब्रह्मसाक्षात्कार करवा सकते हैं। कुछ साधन अपने ढंग के होते हैं जो जीव को कुछ ऊँचाई तक तो ले जाते हैं लेकिन उनमें साक्षात्कार कराने की क्षमता नहीं होती।

तांत्रिक साधना में परमात्मा का साक्षात्कार कराने की शक्ति नहीं है, कर्मकांड परमात्मा का साक्षात्कार नहीं करवा सकता, तीर्थस्नान में भी परमात्मा का साक्षात्कार कराने का सामर्थ्य नहीं है। तीर्थस्नान से हृदय पवित्र होगा, भाव शुद्ध होगा लेकिन उस पवित्र हृदय और शुद्ध भाव से किसी महापुरूष को खोजकर सत्संग सुनेगा तब उस तीर्थ का फल पुण्य और परम पुण्य में बदलेगा।

तीरथ का है एक फल, संत मिले फल चार।
सदगुरू मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार।।

अगर तीर्थस्नान से ही परमात्मा मिल जाते तो सबसे पहले मेंढकों व मछलियों को परमात्मा का साक्षात्कार होना चाहिए था क्योंकि वे बेचारे तो तीर्थ से बाहर कभी निकलते ही नहीं हैं। हालांकि तीर्थदर्शन व तीर्थस्नान करना चाहिए क्योंकि इस सत्कर्म से बुद्धि पवित्र होती है। पवित्र बुद्धि में ही सत्संग की रूचि होती है। पापी बुद्धि में सत्संग की रूचि नहीं होती है। पुण्यों की वृद्धि और अन्तःकरण की पवित्रता से ही सत्संग में बैठने की इच्छा होती है। अति पापी आदमी तो सत्संग की जगह पर पहुँच भी नहीं सकता है और यदि पहुँचकर बैठ गया तो आप उसे अति पापी मत समझना। उसके पाप अल्प हैं और यदि वह बैठा रहेगा तो पाप क्षीण हो जाएँगे। फिर नया पाप न करे तो वह महात्मा बन जाएगा। चाहे उसके कपड़े महात्मा के न भी हों लेकिन उसकी आत्मा तो महान् बनने लगेगी।

उस जोगन ने सोचा कि कुछ ऐसा करूँ जिससे गार्गी जैसी मेरी पूजा हो। जोगन को आत्मयोग तो था नहीं, केवल भीतर के क्रियायोग की थोड़ी सी कुँजी मिली थी, संकल्पशक्ति विकसित हुई थी। आप किसी के लिए दुआ कर दो तो वह सफल हो जाए यह एक छोटी सी बात है लेकिन दुआ जहाँ से आती है उस दुआ के भंडारस्वरूप आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार करना निराली बात है।

आपके घर में लाईट फिटिंग हो गई, 10 वॉट, 25 वॉट, 40 वॉट या 100 वॉट का बल्ब जलता है लेकिन यदि वहीं 200 वॉट का एक बल्ब और लग गया तो तुम पावर हाऊस तो नहीं हो गये भाई ! चूहे को हल्दी की डली मिल गई तो वह बिल में जाकर मूँछें ऐंठने लग गया कि हम भी दुकानदार हैं क्योंकि दुकानदार के पास भी यही वस्तुएँ होती हैं।

रात्रि में कहीं शराबियों की महफिल हुई थी। शराब के नशे में धत्त होकर वे वहीं लुढ़ककर सो गये। जब चूहे बाहर निकले तो फर्श पर व्हिस्की की दो-चार बूँदे कहीं ढुली पड़ी थीं। किसी चूहे ने चाट लीं तो नशा चढ़ गया। वह चूहा दो पैरों के बल खड़ा हो गया और अपनी मूँछे ऐंठने लगाः "बुलाओ बिल्ली की बच्ची को..... कहाँ रहती है ? अब हम उससे नहीं डरते।"

कहने का तात्पर्य यह है कि बोतल के बल से आई हुई निर्भीकता वास्तविक नहीं है। अभी बिल्ली आयेगी तो स्वाहा कर लेगी। चूहे में से तुम मनुष्य बन जाओगे तो बिल्ली से नहीं डरोगे लेकिन चूहा रहकर शराब के बल पर तुम बिल्ली के साथ भिड़ोगे तो वही हाल होगा जो दूसरे चूहों का होता है। ऐसे ही जीव होकर तुम मौत से भिड़ोगे तो जैसे अन्य जीवों का हाल होता है, ऐसा ही तुम्हारा भी हाल होगा। जीव के स्थान पर शिवत्व को तुम पा लो, फिर मौत आये, मौत का बाप आए, उसके साथ आँख मिलाओगे तो वह तुम्हारे चरणों में झुक जाएगी और तुम उसके सिर पर पैर रखकर मुक्तात्मा होकर परमात्मा से मिल जाओगे।

दुनिया के सब राजा मिलकर जो चीज नहीं दे सकते, दुनिया के सब सैनिक मिलकर जो चीज नहीं दे सकते, हजारों-हजारों जन्मों के माता-पिता मिलकर जो चीज नहीं दे सकते वह चीज सत्संग में हँसते-हँसते सहज ही मिल जाती है। इसलिए सत्संग ही सबसे ऊँचा साधन माना गया है। तुलसीदास जी कहा हैः

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।।

सत्संग के पुण्य की बराबरी तो स्वर्ग का पुण्य भी नहीं कर सकता है। शुकदेवजी महाराज परीक्षित को सत्संग सुनाने का संकल्प करके ध्यानस्थ हुए तो आकाश में देवता लोग दिखाई दिये। उन्होंने प्रार्थना कीः "महाराज ! आप ब्रह्मज्ञान का जो सत्संग अपने शिष्य परीक्षित को सुनाने जा रहे हैं, कृपा करके उसके बदले हमारे लिये संकल्प कीजिए और हमें ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो, ऐसी कृपा कीजिये। बात रही परीक्षित की तो उसे स्वर्ग का अमृत देकर अमर लोक की यात्रा करवा देते हैं।"

शुकदेव जी ने कहाः "स्वर्ग का अमृत पीने से अप्सराएँ मिलेगी, अमरावती मिलेगी लेकिन पुण्य क्षीण होते ही पुनः गिरना पड़ेगा जबकि सत्संग सुनने से पाप खत्म होते हैं। स्वर्ग में रहने से अप्सराएँ मिलती हैं, लेकिन सत्संग में रहने से देर सबेर आत्मा को परमात्मा की मुलाकात होती है। देवता लोग ! तुम चालाकी करते हो। हीरा लेकर तुम काँच का टुकड़ा देना चाहते हो। मैं तुम्हारे लिये संकल्प नहीं करूँगा, मेरा परीक्षित ही उसका अधिकारी है।" ऐसा कहकर शुकदेव जी ने देवताओं को इन्कार कर दिया।

कैसे फक्कड़ होते हैं संतजन.....! राजा-महाराजों पर जब तक वे उदार हैं, सरल हैं तब तक तो ठीक है, लेकिन यदि संत अड़ जाएँ तो उनके लिए देवता क्या होता है ? इन्द्र क्या होता है ?

तीन टूक कौपिन की, भाजी बिना लूण।
तुलसी हृदय रघुबीर बसे, तो इन्द्र बापड़ो कूण ?
पीत्वा ब्रह्मरस योगिनो भूत्वा उन्मतः।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भ्रातयेत् अन्यस्य का वार्ता।।

वे संत ऐसे आत्मदेव को पा लेते हैं। उस आत्मदेव को पाये बिना गिरनार की वह बेचारी जोगन आत्मज्ञानियों सा ढोंग करने लगी। ढोंग करने से शक्ति क्षीण होती है। नकल करने में भी अक्ल चाहिये नहीं तो शकल बदल जाती है। जोगन ने सोचा कि मैं राजा के यहाँ जाऊँ तो जैसे गार्गी गई थी जनक के दरबार में, ऐसे ही मैं भी एकदम परमहंस होकर, दिगम्बर होकर जाऊँ, ताकि मेरा प्रभाव बढ़ जाये। वह रथ में निर्वस्त्र बैठकर राजदरबार में गई।

मूर्खों ने उसे देखकर वाह-वाही की लेकिन राजा के दरबार में कार्यरत ब्राह्मण मंत्री की वेद-वेदांत व शास्त्रज्ञान में पारंगत पत्नी ने सोचा कि राजा भले ही इसे माता जी माने, पूजा करे चाहे इसका आदर करे, फिर भी खुले आम स्त्री का निर्वस्त्र होकर निकलना सामाजिक धर्म नहीं है। साधु भी जब समाज में रहता है तो कुछ ओढ़-पहनकर ही चलता है।

जो लोग समाज में निर्वस्त्र होकर बैठते हैं उन्हें इस सूत्र का ध्यान रखना चाहिए। तुम गिरि-गुफा में हो तो भले नंगधड़ंग बैठो, चलेगा लेकिन जब सिंहस्थ कुंभ या समाज में ऐसी जगह आते हो जहाँ से माँ-बहने निकलती हैं, वहाँ तो तुम्हें लोक-लज्जा निवारणार्थ, जैसे शिवजी भी ओढ़ लेते हैं, ऐसे तुमको भी कुछ ओढ़ना चाहिए।

यह सामाजिक धर्म है। तुम जब समाज में जाते हो तो समाज की व्यवस्था न बिगड़े, यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। ऐसे ही घर में कौटुम्बिक धर्म व सत्संग में सत्संग धर्म होता है। तुम सत्संग में चलकर आते हो तो एक-एक कदम चलने पर एक-एक यज्ञ करने का फल मिलता है लेकिन चालू सत्संग में पीछे से आकर आगे बैठो तो पीछे वाले को कथा में बाधा पहुँचाने से कथा में आने का पुण्य नष्ट हो जाता है।

जैसे गाड़ी चलाना हो तो पहले गाड़ी स्टार्ट करो, एक्सीलेटर दो, फिर गियर दो, फिर धीरे-धीरे क्लच छोड़ते हुए एक्सीलेटर से गति बढ़ाओ.... यह ड्राईविंग का धर्म है। पहले से ही यदि तुम एक्सीलेटर की जगह ब्रेक पर पैर रखोगे अथवा ब्रेक की जगह तुम एक्सीलेटर पर पैर रखोगे तो ड्रायविंग धर्म से आप च्युत होकर स्वयं के लिए खतरा पैदा कर लोगे।

ऐसे ही 'स्व' स्वधर्म होता है। जीव का वास्तविक धर्म है अपने ईश्वर से जुड़ना। शरीर का धर्म है आवास, वस्त्र, अन्न। मन का धर्म है मनन करना, बुद्धि का धर्म है निर्णय करना, साँसों का धर्म है शरीर का संचार करना लेकिन आपका धर्म है स्वयं को जानकर जीवन की शाम हो जाये उसके पहले जीवनदाता का साक्षात्कार करना।

उस जोगन ने तो यह किया ही नहीं और प्रसिद्धि की लालच में गिरकर निर्वस्त्र हो राजदरबार में पहुँच गई। राजा और प्रजा दोनों ने ही उसे नवाजा। **यथा राजा तथा प्रजा।** लेकिन कभी-कभी प्रजा में भी हिम्मतवाले लोग निकल आते हैं। उस मंत्री की पत्नी को बहुत दुःख हुआ। मंत्री जब घर आया तो वह कहने लगीः "पतिदेव ! आप तो ब्राह्मण हैं, शास्त्र के ज्ञाता हैं। वह अल्प मति की माई, जो थोड़ी सी शक्ति मिलने के कारण सामाजिक धर्म का खंडन करके स्वयं को बड़ी सिद्ध साबित कर रही थी। मेरा मस्तक तो झुका नहीं अपितु मेरे चित्त में एक तूफान पैदा हुआ कि हमारे सनातन धर्म, हिन्दू धर्म की रक्षा के बजाय वह तो इसका विनाश कर रही है। यहाँ सामाजिक धर्म का ह्रास हो रहा है। आप राजा को समझाइये।"

मंत्री ने कहाः "राजा इस जोगन पर इतना लट्टू हो गया है, मूर्ख बनकर उससे इतना प्रभावित हो गया है कि यदि मैं कहूँगा तो वह मुझे बरखास्त कर देगा।"

मंत्री की पत्नी ने सोचा कि मंत्री को तो अपना पद खोने का भय है लेकिन मैं तो अपना कर्त्तव्य निभाऊँगी।

यह महिला जब बच्ची थी तब अपने पिता के साथ किसी महापुरूष के सत्संग में जाती थी। उस समय तो सत्संग के प्रभाव का पता नहीं चला लेकिन देर सबेर सत्संग में मिले संस्कार अपना असर तो दिखाते ही हैं।

वह मंत्री की पत्नी अपने पति के सोने के बाद रात के 12 बजे उठी और आत्मरक्षार्थ एक खंजर अपनी साड़ी के पल्लू में खोंसकर गिरनार की ओर चल पड़ी। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसे एक योगी पुरूष की गुफा में जाने का रास्ता दिखा। वह उस पर चल पड़ी और गुफा के द्वार पर पहुँचकर दस्तक दी। मध्य रात्रि में दस्तक की आवाज सुनकर योगी ने पूछाः

"कौन है ?"

महिलाः "मैं अमुक मंत्री की धर्मपत्नी हूँ।"

द्वार खोलते ही योगी चौंकेः "महिला ! इतनी रात गये अबला बाई तू कैसे आई है ?"

महिलाः "महाराज ! मैं अबला नहीं, सबला हूँ।" खंजर दिखाती हुई वह आगे बोलीः "अपनी रक्षा करने की मुझमें हिम्मत है। यदि कोई मेरे शील को अंगुली लगाने की भी चेष्टा करता तो मैं उसकी अंगुली काट लेती। इस बल से मैं आपके द्वार तक पहुँची हूँ।"

उस महिला के निर्भीक वचनों से प्रसन्न हुए संत ने पूछाः "कहो, क्या बात है ?"

महिलाः "महाराज ! मुझे नींद नहीं आती। मैं बड़ी दुःखी हूँ। हमारे हिन्दू धर्म की, सनातन धर्म की हानि हो रही है। गिरनार में रहने वाली अमुक जोगन निर्वस्त्र होकर राजदरबार में सम्मानित हो रही है। कल दूसरी माँ-बहनें भी ऐसा करेंगी तो समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त होगा। महाराज ! कुछ भी कीजियेगा लेकिन इस जोगन को सबक सिखलाइयेगा।"

महाराज ने पूछाः "क्या सबक सिखाऊँ ?"

महिलाः "महाराज ! मेरा उससे कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है, लेकिन किसी भी प्रकार से वह कपड़े पहनना सीख ले। निर्वस्त्र होकर राजदरबार में आना उसकी त्रुटि थी, ऐसा उसे पता चल सके, ऐसी कुछ कृपा कीजिये।"

महाराज ने कहाः "अच्छा, अब तू जा। चिन्ता मत कर। तेरा काम हो जाएगा। मैं उस जोगन को वापस कपड़े पहनना सिखा दूँगा।" महाराज ने मंत्री की पत्नी को इतना आश्वासन देकर रवाना किया।

महाराज के चरणों में एक प्रेतात्मा अपना उद्धार करने के लिए आयी थी। महाराज ने उसका नाम गंगाराम रखकर भजन करने के लिए उसे किसी गुफा में छोड़ रखा था। महाराज ने प्रेत को बुलायाः "बेटा गंगाराम !" सुनते ही प्रेत हाजिर हो गया। महाराज ने उसे आदेश दियाः "उस जोगन के पेट में घुस जा और सुबह होते होते उसके भीतर दस महीने का बच्चा हो जाना ताकि उसे पता चले और जब तक मैं आज्ञा न दूँ तब तक अन्दर ही हिलते-डुलते रहना। उसे ऐसा महसूस होना चाहिए की बस, अभी प्रसूति हुई..... अभी प्रसूति हुई।"

गंगाराम उस जोगन के पेट में घुस गया। प्रातःकाल में जब जोगन उठी तो देखकर चौंक गईः "अरे बाप रे.....!" एकाध बच्चे को पूर्व में जन्म देने का उसे अनुभव भी था। वह देखती है कि यह तो अभी ही प्रसूति होने वाली है। अब किसे मुँह दिखाऊँगी। मैं तो एकान्त भजन करने वाली जोगन हो गई थी। अगर कोई अभी मुझे बच्चे को जन्म देनेवाली माँ के रूप में देखेगा, सुनेगा तो मेरी इज्जत ही मिट जाएगी।' ऐसा सोचकर वह दुःखी होकर अकेले में रोती रही..... रोती रही। झोली-डंडे का चमत्कार भूलकर वह पेट के चमत्कार को ठीक करने की चिन्ता में चिन्तित रहने लगी।

कहीं वह रात्रि में आत्महत्या न कर बैठे इसलिए उस योगी महात्मा ने मंत्री की पत्नी से कहा था कि दो चार गुप्तचर भेज दे ताकि उस पर नजर रखी जा सके।

अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग वेश में दो महिला व दो पुरूष गुप्तचर के रूप में तैनात कर दिये जो चौबीसों घंटे उस पर नजर रखे हुए थे। एक रात वह जोगिन अपने साथ

अन्याय करने को उद्यत हुई। उसने अपनी पीठ पर पत्थर बाँधा और चल पड़ी गिरनार की किसी ऊँचाई से कूदकर आत्महत्या करने के लिए। नियत स्थान पर पहुँचकर वह कूदने के लिए कदम बढ़ा ही रही थी कि गुप्तचरों ने उसे पकड़ लिया।

गुरूजी को बुलाया गया। उन्होंने पूछाः "क्यों बाई ! आत्महत्या क्यों कर रही थी ?"

वह गिड़गिड़ाकर रोने लगीः "महाराज ! मैं निर्दोष हूँ लेकिन मुझे यदि प्रसूति हो गई, बच्चा पैदा हो गया तो गिरनार की गुफाओं के सारे साधु मुझ पर टूट पड़ेंगे। महाराज ! यहाँ का राजा भी मुझे मानता है.... वह क्या कहेगा ?"

महाराज ने कहाः "वह क्या कहेगा, यह सोचती है लेकिन नग्न होकर जाऊँगी तो दूसरे लोगों के पतन होने पर भगवान क्या कहेगा ? गुरू महाराज क्या कहेंगे ? यह नहीं सोचा मूर्ख ! निगुरी !! तू नग्न क्यों गई ? अब कपड़े पहनेगी कि नहीं पहनेगी ?"

जोगन गिड़गिड़ाईः "महाराज ! एक नहीं चार-चार कपड़े पहनूँगी।"

महाराज ने डाँटकर पूछाः "फिर कभी ऐसे चमत्कार दिखाएगी ?"

जोगनः "महाराज ! अब कभी ऐसे चमत्कार नहीं दिखाऊँगी। मुझे ठीक कर दीजिये।" कहकर वह महाराज के चरणों में गिर पड़ी।

वे संत दयालु थे। उनका हृदय पसीजा। उन्होंने आदेश दियाः "बेटा गंगाराम ! वापस आ जाओ।"

गंगाराम वापस आ गया तो जोगन का पेट एकदम National Highway जैसा पूर्ववत सीधा सपाट हो गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आत्मसाक्षात्कार की रूचि बिना कोई साधक साधना करेगा और ऋद्धि-सिद्धि या कोई योग्यता आ जाएगी तो उसी में कूपमंडूक बनकर फँस जाएगा और स्वयं को महान समझने लगेगा। इसलिए जीवन में सत्संग की अत्यधिक आवश्यकता है। अकेले में भजन कर बड़ा हो जाना वास्तविक उन्नति नहीं है। वास्तविक उन्नति है सर्वोच्च परमात्मा के ज्ञान को श्रवण, मनन व आत्मसात् कर उसकी गहराई में गोता मारकर उस परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना..... ऐसा करने से बेड़ा पार हो जायेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तू ही तू

'जन्म-मृत्यु में ही तू ही तू.... मान तू..... अपमान भी तू.... तन्दरूस्ती तू... रोग भी तू..... सर्वत्र बस तू ही तू।' यदि मनुष्य को ऐसा ज्ञान हो जाये तो वह जीवनमुक्त हो गया। फिर कोई फिक्र नहीं। रोग, दुःख और अपमान में यदि आप अपने ही प्रियतम का हाथ देखेंगे तो ये

उतना दुःखी नहीं बनाएँगे, जितना दुःख भेदबुद्धि से होता है। अभेदबुद्धि में दुःख और भय नहीं, उसमें तो ओज, तेज, आनंद, शांति होती है।

आज कल समाज में जितने भी तनाव, खिंचाव, खून आदि हो रहे हैं उनके पीछे भेदबुद्धि का ही हाथ है क्योंकि क्रोध कभी स्वयं पर नहीं, दूसरों पर ही आता है। ऐसे ही मनुष्य कभी भी स्वयं पर मोहित नहीं होता, चाहे वह कितना भी सुन्दर या सुन्दरी हो। मोह दूसरे पर ही होता है। ऐसे ही काम, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि हमें स्वयं को देखकर नहीं, अपितु दूसरे को देखकर ही उपजते हैं।

यदि प्रत्येक अवस्था में अपने ही आत्मस्वरूप के दीदार करने की कला आ जाये तो सर्वत्र तू ही तू नजर आएगा।

तस्यैवाहम्-तवैवाहम्-सोहम्।

तस्यैवाहम् अर्थात् मैं उसी का हूँ। **तवैवाहम्** अर्थात् मैं तेरा हूँ। **सोहम्** अर्थात् वह मैं हूँ।

मँगनी होने के बाद लड़की कहती हैः "मैं उसकी हूँ।" शादी होने के बाद वह कहती हैः "मैं तेरी हूँ।" घर में रहकर कुछ दिन पुरानी हो जाय और पति का मित्र अगर पूछने आवे कि अमुक भाई कहाँ है ? मुझे उनसे जरूरी काम है तो वह कहती हैः "मुझसे ही कह दो। वे और मैं एक ही हो तो हैं। यह घर मेरा नहीं है क्या ?"

'तू ही तू' मानो मँगनी हुई। 'मेरा तू' अर्थात् शादी हो गई और मैं भी तू यानी काम पक्का हो गया..... मेरा घर है।

मँगनी हुई तो लड़की बोलती है 'उनका घर है... मेरे ससुरालवालों का घर है'। शादी हुई तो कहती है 'मेरे पति का घर है' और थोड़ी पुरानी हो गई तो कहती है 'हमारा घर लगता है।' फिर मायके का घर पराया और ससुरालवाला घर अपना लगता है। यह सब भाव बदलने के कारण ही होता है। बाहर का घर 'मेरा तेरा' तो ठीक है लेकिन आत्मा-परमात्मा 'मैं हूँ.... मेरा है...' ऐसी सोच समझ आ गई तो काम बन जाएगा।

भाव किसी साधन से नहीं, ज्ञान से बदलता है। बकरे के गले में फँदा हो फिर आप उसे घास खिलाओ, मिठाई खिलाओ, अगरबत्ती करो चाहे आरती करो फिर भी बँधन नहीं छूटेगा लेकिन फँदा कहाँ है व कैसे कटेगा यह जानकर कैंची ले आओ। बस, काम बन जाएगा। ऐसे ही मन रूपी बकरे के गले में जो फँदा पड़ा है उसे समझो.... विवेक, वैराग्य और सत्संग की कैंची से काटो तो जीव स्वतंत्र, स्व के तंत्र हो जाएगा।

भगवान कहते हैः

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।

"जिन पुण्यकर्मा मनुष्यों के पाप नष्ट हो गये हैं, वे द्वन्द्व-मोह से रहित हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं।"

(गीताः 7.28)

द्वन्द्व क्या है ? सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि सब द्वन्द्व हैं। द्वन्द्व और मोह से मुक्त पुरूष 'यह अच्छा कि वह अच्छा.... संसार में ऊँचे रहें कि भक्ति करें....' ऐसे संकल्प-विकल्प से रहित हो जातें। संसार की नश्वरता को वे भलीभाँति जान चुके होते हैं। ऐसे पुण्यात्मा लोग दृढ़ता से भगवान का भजन करते हैं और परमात्मतत्त्व के ज्ञान एवं विज्ञान को प्राप्त करते हैं।

विद्याएँ तीन प्रकार की होती हैं- पहली ऐहिक विद्याः स्कूल-कॉलेजों में आज कल जो पेट भरने की विद्या मिलती है, वह ऐहिक विद्या कहलाती है।

दूसरी योगविद्याः इससे अलौकिक सामर्थ्य आती है।

तीसरी आत्मविद्याः ऐसा ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करना, जिसका उल्लेख गीता में है।

ज्ञान अपनी आत्मा का प्राप्त करना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? शरीर का नाम तो रख दिया कि अमुक भाई, अमुक साहब, डॉक्टर साहब, वकील साहब, न्यायाधीश, कलेक्टर, संत आदि लेकिन ये सारे नाम शरीर तक ही संबंध रखते हैं। शरीर खत्म हो गया तो सब छू हो जाएँगे लेकिन ये सारे नाम-रूप और मन-बुद्धि की सत्ता स्फूर्ति जहाँ से आती है वह आत्मा है। उस आत्मा का ज्ञान पाना चाहिए कि आत्मा कैसा है ? उसका स्वरूप क्या है ? हम कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? लाखों-करोड़ों जन्म हो गये। हम शरीर लेते गये.... छोड़ते गये। वास्तव में हम कौन हैं ? इसका वेदान्ती व तत्त्वदृष्टि से ज्ञान प्राप्त करके, श्रवण करके फिर उसके अनुभव में आ जाना इसे कहते हैं विज्ञान।

ऐहिक विज्ञान एक पृथक विषय है जिसमें वस्तुओं का ज्ञान होने पर उनका परिवर्तन, परिमार्जन कर उन्हें उपयोगी बनाना एवं उनमें संशोधन कर उनकी उपयोगिता बढ़ाना ऐहिक विज्ञान कहलाता है। लेकिन अपने स्वरूप के ज्ञान को अनुभव में लाना यह आत्मविज्ञान है। इलेक्ट्रीसीटी और इलेक्ट्रानिकरण का ज्ञान हुआ तो कितना लाभ होता है। विद्युत तत्त्व के ज्ञान के उपयोग से हम अनेकानेक उपकरण चलाते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश तत्त्व का यदि हम ज्ञान पाते हैं तो अनेकानेक ऐहिक लाभ होते हैं लेकिन ये पंचमहाभूत जिस प्रकृति से संचलित होते हैं, उस प्रकृति को संचालित करनेवाले आत्मा-परमात्मा का यदि ज्ञान पावें तो कितना सारा लाभ हो सकता है !

चपरासी के घर की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके उसका उपयोग करने से इतनी खुशी मिलती है तो राष्ट्रपति के घर का खजाना मिल जाए तो आपको कितना लाभ होगा ? .....और परमात्मा तो फिर राष्ट्रपतियों का भी राष्ट्रपति है। प्रवृत्ति परमात्मा के चरणों की दासी है। उस वासी के पंचभौतिक जगत के थोड़े से हिस्से का भी यदि ठीक से ज्ञान हो जाता है तो सांसारिक प्रसिद्धि मिल जाती है।

आईन्स्टीन ने रिसर्च किया तो कितना प्रसिद्ध हो गया !

जमनदादास बजाज के जामाता एवं गुजरात के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीमन्ननारायण ने आईन्स्टीन से पूछाः "रिसर्च की दुनिया में तुम इतने आगे कैसे बढ़ गये ?"

आईन्स्टीन ने कहाः "चलो, मैं दिखाता हूँ।" वह हाथ पकड़कर उन्हें एक कमरे में ले गया। कमरा साफ-सुथरा था जिसमें ध्यान करने के लिए एक आसन बिछा था और एक मूर्ति थी। आईन्स्टीन ने कहाः "मैं भारतीय योगविद्या के अनुसार प्रतिदिन ध्यान करता हूँ। मेरी पत्नी के साथ पिछले चार वर्षों से मेरा शारीरिक संबंध नहीं है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से मेरा तीसरा केन्द्र विकसित हुआ जिसे रिसर्च की दुनिया में लगाने से यह सब कुछ प्राप्त हुआ। मेरे लिये तो यह आसान है लेकिन लोगों के लिए चमत्कार है।"

योगविद्या का आंशिक ज्ञान पाकर उस शक्ति को रिसर्च की दुनिया में खर्च कर आईन्स्टीन विश्वविख्यात हो गया। समर्थ रामदास ने योगविद्या सहित आत्मविद्या का ज्ञान पाया तो शिवाजी को इतना बल, शांति और समता मिली कि राजवैभव होते हुए भी शिवाजी राज्यदोष में नहीं आये।

मुगल शासकों से शिवाजी का युद्ध होता और मुगलों की हार होती तो उनके सरदार तोहफे में खूबसूरत राजकुमारियाँ, शाहजादियाँ ले आते। अगर दूसरा कोई राजा होता तो तोहफा पाकर बोल उठताः "वाह ! शाबास !!" और लाने वाले को इनाम देता लेकिन शिवाजी कहते थेः "नहीं। हमारी दुश्मनी तो राजा से थी, उसकी कन्या या पत्नी से नहीं।"

सरदार कहतेः "हम तो आपके लिए तोहफा लाये हैं। आप इसे अपनी भार्या बनाइये। यह बहुत सुन्दर है।"

तब शिवाजी कहतेः "यह सुन्दर है तो मुझे अगर दूसरे जन्म में आना पड़ा तो ऐसी सुन्दर माँ की कोख से जन्म लूँगा। यह तो मेरी बहन के समान है, माँ के समान है।"

भारतीय संस्कृति कितनी उदार है। कितनी महान है !! समर्थ रामदास की अनुभूति का प्रसाद शिवाजी के जीवन में उतरा है। इसे कहते हैं ज्ञान विज्ञान।

मनुष्य का आत्मा इतना सुखस्वरूप है कि उसे ऐहिक विकारों की तो तनिक सी भी आवश्यकता नहीं है लेकिन उन बेचारे ने अपने लेकिन उस बेचारे ने अपने आत्मसुख का अभी ज्ञान ही नहीं पाया तो विज्ञान कैसे पायेगा ? इसी कारण तो उसे तृप्ति नहीं होती है और कहता हैः "सिगरेट, तू सुख दे। डिस्को, तू सुख दे। परदेश के रूपयों की थप्पियाँ, तुम सुख दो...." लेकिन वे बेचारी खुद लाचार हैं सुख के लेने के लिए।

विदेशों में पति भी दुःखी है, पत्नी भी दुःखी है, उनके बच्चे भी दुःखी हैं इन चीजों से। मैंने विश्व के कई देशों की यात्रा की और देखा कि उन लोगों ने कितना भी एकत्रित कर लिया, कितना भी डिस्को कर लिया लेकिन उन लोगों में हमारे देश की तुलना में कई गुना अशांति है क्योंकि वहाँ ऐहिक ज्ञान-विज्ञान तो है लेकिन आत्मज्ञान का प्रसाद नहीं है। ऐहिक ज्ञान तो प्रकृति का अंश मात्र है, लेकिन प्रकृति को जहाँ से सत्ता आती है, उस स्व का, परमात्मतत्त्व का

ज्ञान मिल जाए और उस ज्ञान में थोड़ी यात्रा करके गहरा उतर कर उस विज्ञान का अनुभव कर लिया जाए तो वह व्यक्ति सुखी, खुशहाल व तृप्त हो जाता है। फिर ऐसा आदमी अगर लाखों पुरूषों के बीच भी बोले तो उन सभी को अन्तरात्मा की तृप्ति की झलकें प्राप्त हो जाती हैं जो कि संसार से प्राप्त होना असंभव है।

गीता प्रेस, गोरखपुर के भक्तांक में एक घटना प्रकाशित हुई थी। काशी में एक महात्मा की कुटी की द्वार पर कोई बिल्ली मर गयी थी। महात्मा का स्वभाव दयालु था अतः उन्होंने बिल्ली को कपड़े में लपेटकर गंगाजी में प्रवाहित कर दिया तो बिल्ली का जीव देव की देह धारण करके प्रकट होकर बोलाः

"महात्मा जी ! आपने मेरा कल्याण कर दिया। मैं वही बिल्ली हूँ जो आपके द्वार पर मरी हुई पड़ी थी। आपकी दृष्टि पड़ने से तथा आपके करकमलों से अत्येष्टि होने से मुझे देव की देह मिली है, महाराज !"

यह भी कोई बड़ी बात नहीं है। जो ज्ञान-विज्ञान से तृप्त होता है ऐसा महापुरूष यदि किसी मुर्दे की जलती चिता के धुएँ को भी देख लेता है तो फिर मरने वाला महापापी व पातकी भी क्यों न रहा हो, उसे नरक की यात्रा नहीं करनी पड़ती, उसकी सदगति हो जाती है। यह कितना अदभुत विज्ञान है !

सितारों से आगे जहाँ कुछ और भी है।
इश्क के इम्तहाँ कुछ और भी है।।

बालक के सम्मुख चाकलेट, लालीपॉप व बिस्किट के साथ चाहे आप हीरे जवाहरात रख दो या सुन्दर कीमती रत्न, मोती रख दो, वह नन्हा-मुन्ना इन रत्नों को छूकर या देखकर नहीं रख देगा और चॉकलेट-बिस्किट में खुश हो जाएगा। ऐसे ही हमारी मति भी ऐहिक जगत में उलझी होकर तात्त्विक दृष्टि से नन्हें-मुन्नों जैसी ही है। हम भी संसार के खिलौनों में इतना उलझ जाते हैं कि आत्महीरा हमारे साथ, हमारे पास होते हुए भी हमें अनुभूति नहीं होती है। जब तक आत्मा-परमात्मा के विषय में हमने श्रवण-मनन नहीं किया और भीतर थोड़ा रिसर्च नहीं किया तब तक आत्महीन ऐसे ही पढ़ा रह जाता है।

तुलसीदास जी ने कहा हैः

घट में है सूझे नहीं, नालत ऐसे जिन्द।
तुलसी ऐसे जीव को, भयो मोतियाबिन्द।।

कबीर जी ने कहा हैः

भटक मूँआ भेदू बिना पावे कौन उपाय।
खोजत खोजत जुग गये, पाव कोस घर आय।।

आदमी खोजता क्या है ? सुख। सुख भी कैसा ? ऐसा नहीं कि आपको दस मिनट के लिए सुख मिले फिर दुःख। दस घंटे, दस दिन या दस साल तक आपको सुख मिले फिर भी बाद

में आप दुःख नहीं चाहते हैं। जीवन भर सुख और मरने के बाद आपको दुःख मिले ऐसा भी आप नहीं चाहते। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं चाहता। सदा रहने वाला सुख प्रत्येक मनुष्य की माँग है लेकिन वह कितनी भी कोशिश करके देख ले, सदा रहने वाला सुख प्रकृति में है ही नहीं।

स्थाई सुख की माँग है तो ऐसा सुख भी कहीं न कहीं है। वह दूर नहीं, किसी आकाश-पाताल में नहीं, वह तो तुम्हारे वास्तविक शुद्ध स्वभाव में है, उसका तुम ज्ञान प्राप्त कर लोगे तो सदा रहने वाला सुख तुम्हारे घर का खजाना हो जाएगा।

जो सुख नित्य प्रकाश विभू नाम रूप आधार।

वह नित्य है, प्रकाशस्वरूप है, लेकिन सूर्य, विद्युत या नेत्रों के प्रकाशस्वरूप नहीं, उसे देखने के लिए तो मन का प्रकाश चाहिए।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते।

वह अन्धकार से परे, माया से परे, ज्योतियों की ज्योति तुम्हारा आत्मा है। मन ठीक देखता है कि नहीं इसे भी देखने वाली मति है और मति ठीक है कि नहीं इसे देखने वाली ज्योति है आत्मज्योति। वह सदा ज्यों की त्यों रहती है। नेत्रों की ज्योति, सूर्य-चन्द्र की ज्योति, अग्नि और विद्युत की ज्योति तो कम ज्यादा हो जाती है लेकिन अंधकार में भी महाअंधकार को देखने वाली, दुःख और सुख दोनों ही को देखने वाली आत्मज्योति है। हम दुःख से जुड़ जाते हैं तो दुःखी होते हैं और सुख से जुड़ जाते हैं तो आसक्त होते हैं क्योंकि हमें अपना ज्ञान नहीं है। यदि हम अपने ज्ञान से जुड़ जावें तो न तो हमें आसक्ति होगी, न सुख होगा, न दुःख होगा। हम सदैव परमानंद में रह सकते हैं, ऐसा हमारा आत्मदेव है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।

"जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूटस्थ है, कूट की तरह निर्विकार है, जितेन्द्रिय है और मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा स्वर्ण में समबुद्धिवाला है, ऐसा योगी युक्त (योगरूढ़) कहा जाता है।"

(गीताः 6.8)

भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने राज्याभिषेकोपरांत अपने पिताश्री का श्राद्धकर्म किया जिसमें भुजाएँ पसारकर सबको आमंत्रित किया किः "देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देवाधिदेव और महादेव भी अगर इस दास राम की प्रार्थना सुन लें तो पधार सकते हैं।"

श्राद्ध हुआ। जिन्हे रूचि थे वे साधु-संत तो आये ही अपितु साधुओं के भी साधु भगवान सांब सदाशिव भी साधुओं का वेष धारणकरके अयोध्या आये। जिन्हें भुवनों को भंग करने का व्यसन है, ऐसे शिवजी अगर भोजन करने बैठें तो उनकी मौज है ! वे एक ग्रास से भी तृप्त हो सकते हैं और पूरी सृष्टि को स्वाहा कर दें फिर भी अतृप्त रह सकते हैं। उनके संकल्प का अपना

अनुपम सामर्थ्य है। शिवजी को तो लीला करनी थी। जितना भी परोसा सब स्वाहा... थाली में आया कि स्वाहा।

भरत और शत्रुघ्न परोसते-परोसते थक गये तो लखन भैया से कहा गया। वे भी परोसने में अपना जोर आजमाते हुए थकने लगे। लखनजी भी देखते हैं कि ये बाबा गजब के हैं !

वे राम जी के पास गये और कहने लगेः "ये बाबा जी को जितना भी परोसते हैं सब खत्म कर जाते हैं। परोसकर वापस लेने जाते हैं तब तक वे थाली साफ कर देते हैं और पेट की आकृति वही की वही है। तनिक सा भी फर्क नहीं पड़ रहा है। ऊपर से आवाज देकर परोसने बुला रहे हैं। हजारों लोगों को अभी भोजन कराना बाकी है। हमने सोचा कि पहले बाबा लोगों को भोजन करवा दें बाद में अन्य लोगों को करवाएँगे। दूसरे सभी बाबा तो तृप्त हो गये मात्र दो-तीन बार परोसने मे ही लेकिन इन बाबा ने पेंदे की आवाज भी सुन मारी है फिर भी भूखे ही हैं। अब क्या करें प्रभु !"

प्रभु आये और देखा कि ये कोई पृथ्वीलोक का बाबा नहीं, यह तो शिवलोक का बाबा है। भगवान सांब सदाशिव स्वयं पधारे हैं। रामजी ने मन ही मन प्रणाम किया और आनंदित हुए। उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा कि इन बाबा को तृप्त करना हमारे बस की बात नहीं है। रामजी ने माँ अन्नपूर्णा (पार्वती) का आवाहन कर माँ से ही परोसने का अनुरोध किया। माँ परोसने लगी तो बाबा बोलते हैं- "बस ! अब खेल खत्म हुआ।"

शिवजी ने यह खेल खत्म करते ही दूसरा खेल शुरू कर दिया। शत्रुघ्न को शिवजीरूपी बाबा कहते हैं- "तुम तो शत्रुओं का नाश करने वाले शत्रुघ्न हो।"

शत्रुघ्नः "हाँ, महाराज !"

शिवजीः "अच्छा, तो मुझे सहारा देकर उठा दो। बहुत खाया है तो उठा नहीं जा रहा है।" शत्रुघ्न ने अपना जोर लगाया लेकिन वे उठा न सके। आज तक शत्रुघ्न के मन में जो थोड़ी-बहुत हवा घुसी होगी वह बराबर हो गई। भगवान और तो सब कुछ सहन कर लेते हैं लेकिन अपने प्रिय भक्त का अहंकार नहीं सहते हैं। शिवजी ने अब भरत से कहाः

"भरत भैया ! तुम थोड़ी कोशिश करो।" भरत जी ने भी कोशिश करने के बाद क्षमा माँगी।

शिवजीः "लक्ष्मण लाला ! तुम उठा दो भाई ! बहुत खिला दिया है, इसलिए हम उठ नहीं पा रहे हैं।"

लक्ष्मणजी रामजी के साथ अधिक रहे थे। बड़ों के साथ अधिक रहने से दृष्टि भी बड़ी होती है। अपने से उच्च पुरूषों का संग करने से सहज में ही मति की ऊँचाई होती है और नीच व्यक्तियों की बातों में आने से बहुत नुकसान होते हैं।

राजा जनक ने ज्ञान-विज्ञान से तृप्त अष्टावक्र की शरण ली तो वे भी ज्ञान-विज्ञान से तृप्त हो गये। अश्व राजा, शिवाजी महाराज तथा अन्य वे सभी राजा-महाराजा, जिन्होंने ज्ञान-विज्ञान से तृप्त ब्रह्मवेत्ताओं की शरण ली, वे भी वहाँ पहुँच गये।

जैसा आपका संग होगा वैसा ही रंग आपको लगेगा। आपका मन उस सच्चिदानंद चैतन्य परमात्मा से स्फुरित होता है इसलिए बड़ा संवेदनशील रहता है। इसको जैसा रंग लगा दो, तुरन्त लग जाता है।

धरती में तमाम प्रकार के बीजों में रस भरने की शक्ति है। जैसा बीज होता है, ऐसा रस ले आता है धरती से। ऐसे ही हमारा साहित्य कैसा है ? हमारा संग कैसा है ? हमारा खानपान कैसा है ? हमारी इच्छा कैसी है ? हमारी आवश्यकता कैसी है ? जैसी-जैसी हमारी इच्छा, आवश्यकता, संग, खानपान आदि होते हैं, देर सवेर वैसी ही हमें प्राप्ति होती है।

नश्वर वस्तुओं की इच्छा-वासना बढ़ाने वाला संग करके नश्वर वस्तुओं की ही सत्यबुद्धि से इच्छा और प्रयत्न करते हैं तो हम नश्वर वस्तु और नश्वर शरीर प्राप्त करते जाते हैं... फिर मरते जाते हैं.... फिर जन्मते जाते हैं। यदि हम शाश्वत का ज्ञान सुनें, शाश्वत की इच्छा पैदा हो और मनन करके शाश्वत की गहराई में तनिक सी खोज करें तो शाश्वत आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार भी हो सकता है। वे लोग सचमुच में भाग्यशाली है जिनकी सत्संग में रूचि है और जिन्हें आत्मज्ञान और आत्मविज्ञान श्रवणार्थ मिलता है।

शिवजी ने लक्ष्मण की ओर देखा तो लक्ष्मण जी भगवान राम से प्रार्थना करते हैं- "प्रभु ! आपकी कृपा और आशीर्वाद होगा तो ही मैं सफल हो सकूँगा अन्यथा दोनों भ्राताओं जैसा मेरा हाल भी होगा।" श्रीराम का संकेत पाकर लक्ष्मणजी ने शिवजी से प्रार्थना की किः "नाथ ! उठेंगे तो आप अपनी ही सत्ता से, किन्तु यश इस दास को मिल रहा है।"

शिवजी प्रसन्न होकर उठ खड़े हुए।

राम जी गालों में मन्द-मन्द मुस्कराये।

मुस्कान तीन प्रकार की होती है। एक तो साधारण तौर पर हम लोग ठहाका मारकर खुलेआम हँसते हैं- स्वास्थ्य के लिये यह बहुत अच्छा है।

दूसरी होती है मधुर मुस्कान, जो गालों में ही मुस्करा दी जाती है।

तीसरी है यौगिक मुस्कान, जिसे ज्ञान-विज्ञान से तृप्त हुए आत्मयोगी पुरूष नेत्रों से मुस्कुरा देते हैं। नेत्रों की यह मुस्कान इतना अधिक महत्त्व रखती है कि हजारों नहीं, लाखों आदमी भी अगर बैठे हों और योगी नेत्रों से मुस्कुरा दिया तो लाखों आदमियों को ऐसी शीतलता, शांति और आनंद मिलेगा जो दुनिया की तमाम सुख-सुविधाओं और साधनों के उपभोग से भी उन्हें नहीं मिल सकता है। जिन्हें श्रीराम, श्रीकृष्ण अथवा महापुरूषों के नेत्रों की मुस्कान मिली होगी, उसका आनंद वे ही जानते होंगे।

निगाहों से वे निहाल हो जाते हैं

जो निगाहों में आ जाते हैं।।

ब्रह्मज्ञानी की दृष्टी अमृतवर्षी।

श्रीकृष्ण ने भी ऐसा ही अमृत बरसाया था अन्यथा बाँसुरी की धून से ग्वाल-गोपियाँ पागल हो जाएँ और गौ के बछड़े दूध पीना छोड़ दें यह संभव नहीं था। बंसी के साथ श्रीकृष्ण के नेत्रों की मुस्कान छलकती थी तभी तो ग्वाल-बाल बावरे हो जाते थे।

सिंधी जगत में एक भजन बना हैः

क्या जादू हणी मुंजे जीय में जोगी...

तिन सामीन खे त संभार्या पई।

करे याद उननजी रहमत खे

मां वर वर ओडां निहार्या पई।।

"मेरे जी में, मेरे हृदय में, मेरे चित्त में वह जोगी जादू लगाकर गया है। एक निगाह डाल दी बस ! अब मैं उन्हें बार-बार याद करती हूँ।"

रामकृष्ण परमहंस ने नरेंद्र पर ऐसा ही जादू बरसाया था कि नरेन्द्र में से विवेकानंद हो गये जिन्होंने कहा थाः "मुझे बेचकर चने खा जायें ऐसे विद्वान मेरे कालेज से निकले। मेरी कक्षा के लड़के व मुझे पढ़ानेवाले लोग भी मुझसे आगे थे। काशी में मुझे बेचकर चने खा जाएँ ऐसे विद्वान अभी-भी मिलेंगे फिर भी खेतड़ी के महाराजा रथ में से घोड़ों को हटाकर स्वयं रथ खींचते थे और मुझे बिठाकर स्वागत करते थे, यह मेरे गुरूदेव की निगाह का प्रसाद नहीं तो और क्या है....?"

नूरानी नजर सां दिलबर दरवेशन मोखे निहाल करे छड्यो।

ज्ञान-विज्ञान से जो तृप्त हुए हैं उनकी नजरें नूरानी होती हैं। बाहर से तो वे साधारण दिखती हैं लेकिन उन आँखों से सदैव जो आध्यात्मिकता की ज्योति का प्रकाश बरसता है वह अदभुत होता है।

अमेरिका की डेलाबार प्रयोगशाला में पिछले दस वर्षों से निरंतर रिसर्च करते हुए वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि जो उन्नत एवं उत्तम पुरूष हैं उनकी दृष्टि पड़ते ही या उनके वातावरण में आते ही हमारे एक घन मिलीमीटर रक्त में 1500 श्वेतकण निर्मित होते हैं जो आरोग्यता और प्रसन्नता प्रदान करने में सहायक होते हैं।

विज्ञान तो अब बता रहा है लेकिन हमारे शास्त्र, संत और परम्परा तो सदियों से कहती आ रही है कि दूल्हा-दुल्हन जब आवें तो पहले उन्हें गुरू महाराज के पास शीश नवाने भेजना चाहिए। मरणोपरांत शवयात्रा ले जाते समय श्मशान के मार्ग में कोई मंदिर आता है तो उस मुर्दे को भी देवदर्शन करवाने का विधान है ताकि देवदर्शन के निमित्त किसी हृदय के ज्ञान-विज्ञान से तृप्त हुए महापुरूष की नजर पड़ जाए तो इस मुर्दे का भी कल्याण हो जाए। यह हमारी व्यवस्था थी।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।

'जिसका अंतःकरण ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जो कूट की तरह निर्विकार है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान है वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है ऐसा कहा जाता है।'

(भगवद् गीताः 6.8)

कूट अर्थात् लोहार की ऐरन, सुनार की ऐरन। सुनार की ऐरन पर गहने बनते जाते हैं, गहनों में चमक व डिजाइनें बनती हैं लेकिन ऐरन जैसी की तैसी ही रहती हैं। ऐसे ही तुम्हारी आत्मा पर मन-बुद्धि के विचार एवं सुख-दुःख की तरंगे आती हैं लेकिन तुम्हारे निजी स्वस्वरूप पर कोई असर नहीं पड़ता है, इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर यदि आप उसका अनुभव कर लेंगे तो परमात्मतत्त्व के ज्ञान-विज्ञान से आप भी तृप्त हो जाएँगे व दूसरों को भी तृप्त करने का सामर्थ्य पा लेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

यमराज के दरबार में जिन्दा मनुष्य

मैंने सुनी है एक कहानी।

कोई हाथी मरकर यमपुरी पहुँचा। यमराज ने हाथी से पूछाः "इतना मोटा बढ़िया हाथी और मनुष्य लोक में पैदा होने के बाद भी ऐसे कंगले का कंगला आ गया ? कुछ कमाई नहीं की तूने ?"

हाथी बोलाः "मैं क्या कमाई करता ? मनुष्य तो मुझसे भी बड़ा है फिर भी वह कंगला का कंगला आ जाता है।"

यमराजः "मनुष्य बड़ा कैसे है ? वह तो तेरे एक पैर के आगे भी छोटा सा दिखाई पड़ता है। तू अगर अपनी पूँछ का एक झटका मारे तो मनुष्य चार गुलाट खा जाए। तेरी सूंड दस-दस मनुष्यों को घुमा कर गिरा सकती है। मनुष्य से बड़ा और मजबूत तो घोड़ा होता है, ऊँट होता है और उन सबसे बड़ा तू है।"

यमराजः "क्या खाक है मनुष्य बड़ा ! वह तो छोटा नाटा और दुबला पतला होता है। इधर तो कई मनुष्य आते हैं। मनुष्य बड़ा नहीं होता।"

हाथीः "महाराज ! आपके पास तो मुर्दे मनुष्य आते हैं। किसी जिन्दे मनुष्य से पाला पड़े तो पता चले कि मनुष्य कैसा होता है।"

यमराज ने कहाः "ठीक है। मैं अभी जिन्दा मनुष्य बुलवाकर देख लूँगा।"

यमराज ने यमदूतों को आदेश दिया कि अवैधानिक तरीके से किसी को उठाकर ले आना।

यमदूत चले खोज में मनुष्यलोक पर। उन्होंने देखा कि एक किसान युवक रात्रि के समय अपने खलिहान में खटिया बिछाकर सोया था। यमदूतों ने खटिया को अपने संकल्प से लिफ्ट की भाँति ऊपर उठा लिया और बिना प्राण निकाले उस युवक को सशरीर ही यमपुरी की ओर ले चले। ऊपर की ठंडी हवाओं से उस किसान की नींद खुल गई। सन्नाटा था। चित्त एकाग्र था। उसे यमदूत दिखे। उसने कथा में सुना था कि यमदूत इस प्रकार के होते हैं। खटिया के साथ मुझे ले जा रहे हैं। अगर इनके आगे कुछ भी कहा और 'तू-तू..... मैं-मैं' हो गई और कहीं थोड़ी-सी खटिया टेढ़ी कर दी तो ऐसा गिरूँगा कि हड्डी पसली का पता भी नहीं चलेगा।

उस युवक ने धीरे से अपनी जेब में हाथ डाला और कागज पर कुछ लिखकर वह चुपके से फिर लेट गया। खटिया यमपुरी में पहुँची। खटिया लेकर आये यमदूतों को तत्काल अन्यत्र कहीं दूसरे काम पर भेज दिया गया। उस युवक ने किसी दूसरे यमदूत को यमराज के नाम लिखी वह चिट्ठी देकर यमराज के पास भिजवाया।

चिट्ठी में लिखा थाः "पत्रवाहक मनुष्य को मैं यमपुरी का सर्वेसर्वा बनाता हूँ।" नीचे आदि नारायण भगवान विष्णु का नाम लिखा था।

यमराज चिट्ठी पढ़कर सकते में आ गये लेकिन भगवान नारायण का आदेश था इसलिए उसके परिपालन में युवक को सर्वेसर्वा के पद पर तिलक कर दिया गया। अब जो भी निर्णय हो वे सब इस सर्वेसर्वा की आज्ञा से ही हो सकते हैं।

अब कोई पापी आता तो यमदूत पूछतेः "महाराज ! इसे किस नरक में भेजें ?" वह कहताः "वैकुण्ठ भेज दो।" और वह वैकुण्ठ भेज दिया जाता। किसी भी प्रकार का पापी आता तो वह सर्वेसर्वा उसे न अस्सी नर्क में भेजता न रौरव नर्क में भेजता न कुंभीपाक नर्क में, वरन् सबको वैकुण्ठ में भेज देता था। थोड़े ही दिनों में वैकुण्ठ भर गया।

उधर भगवान नारायण सोचने लगेः "क्या पृथ्वी पर कोई ऐसे पहुँचे हुए आत्म साक्षात्कारी महापुरूष पहुँच गये हैं कि जिनका सत्संग सुनकर, दर्शन करके आदमी निष्पाप हो गये और सब के सब वैकुण्ठ चले आ रहे हैं। अगर कोई ब्रह्मज्ञानी वहाँ हो तो मेरा और उसका तो सीधा संबंध होता है।"

जैसे टेलिफोन आपके घर में है तो एक्सचेंज से उसका संबंध होगा ही। बिना एक्सचेंज के टेलिफोन की लाइन अथवा डिब्बा कोई काम नहीं करेगा। ऐसे ही अगर कोई ब्रह्मवेत्ता होता है तो उसकी और भगवान नारायण की सीधी लाईन होती है।

आपके टेलिफोन में तो केबल लाईन और एक्सचेंज होता है लेकिन परमात्मा और परमात्मा को पाये हुए साक्षात्कारी पुरूष में केबल या एक्सचेंज की जरूरत नहीं होती है। वह तो संकल्प मात्र होता है।

मन मेरो पंछी भयो, उड़न लाग्यो आकाश।

स्वर्गलोक खाली पड़यो, साहेब संतन के पास।।

प्रभु जी बसे साध की रसना....

वह परमात्मा साधु की जिह्वा पर निवास करता है। विष्णु जी सोचते हैं- "ऐसा कोई साधु मैंने नहीं भेजा फिर ये सबके सब लोग वैकुण्ठ में कैसे आ गये ? क्या बात है ?" भगवान ने यमपुरी में पुछवाया।

यमराज ने अहवाल भेजा किः "भगवन् ! वैकुण्ठ किसी ब्रह्मज्ञानी संत की कृपा से नहीं, आपके द्वारा भेजे गये नये सर्वेसर्वा के आदेश से भरा जा रहा है।"

भगवान सोचते हैं- "ऐसा तो मैंने कोई आदमी भेजा नहीं। चलो मैं स्वयं देखता हूँ।"

भगवान यमपुरी में आये तो यमराज ने उठकर उनकी स्तुति की। भगवान पूछते हैं- "कहाँ है वह सर्वेसर्वा ?"

यमराजः "वह सामने के सिंहासन पर बैठा है, जिसे आपने ही भेजा है।"

भगवान चौंकते हैं- "मैंने तो नहीं भेजा।"

यमराज ने वह आदेशपत्र दिखाया जिसमें हस्ताक्षर के स्थान में लिखा था 'आदि नारायण भगवान विष्णु।'

पत्र देखकर भगवान सोचते हैं- "नाम तो मेरा ही लिखा है लेकिन पत्र मैंने नहीं लिखा है। उन्होंने सर्वेसर्वा बन उस मनुष्य को बुलवाया और पूछाः "भाई ! मैंने कब हस्ताक्षर कर तुझे यहाँ भेजा ? तूने मेरे ही नाम के झूठे हस्ताक्षर कर दिये ?"

वह किसान युवक बोलाः "भगवान ! ये हाथ-पैर सब आपकी शक्ति से ही चलते हैं। प्राणीमात्र के हृदय में आप ही हैं ऐसा आपका वचन है। अतः जो कुछ मैंने किया है वह आप ही की सत्ता से हुआ है और आपने ही किया। हाथ क्या करे ? मशीन बेचारी क्या करे ? चलाने वाले तो आप ही हैं।

उमा दारूजोषित की नाईं। सब ही नचावत राम गोसांई।।

ऐसा रामायण में आपने ही लिखवाया है प्रभु ! और गीता में भी आपने ही कहा हैः

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

इसके बाद भी अगर आपने हस्ताक्षर नहीं करवाये तो मैं अपनी बात वापस लेता हूँ लेकिन भगवान ! अब ध्यान रखना कि अब रामायण और गीता को कोई भी नहीं मानेगा। '**करन करावनहार स्वामी। सकल घटों के अन्तर्यामी।।** इस सिख शास्त्र को भी कोई नहीं मानेगा। आप तो कहते हैं 'मैं सबका प्रेरक हूँ' तो मुझे प्रेरणा करने वाले भी तो आप ही हुए इसलिए मैंने आपका नाम लिख दिया। यदि आप मुझे झूठा साबित करते हैं तो आपके शास्त्र भी झूठे हो जाएँगे, फिर लोगों को भक्ति कैसे मिलेगी ? संसार नरक बन जाएगा।"

भगवान कहते हैं- "बात तो सत्य है रे जिन्दा मनुष्य ! चलो भाई ! ये हस्ताक्षर करने की सत्ता मेरी है इसलिए मेरा नाम लिख दिया लेकिन तूने सारे पापी-अपराधियों को वैकुण्ठ में क्यों भेज दिया ? जिसका जैसा पाप है, वैसी सजा देनी थी ताकि न्याय हो।"

युवकः "भगवान ! मैं सजा देने के लिए नियुक्त नहीं हुआ हूँ। मैं तो अवैधानिक रूप से लाया गया हूँ। मेरी कुर्सी चार दिन की है, पता नहीं कब चली जाए, इसलिए जितने अधिक भलाई के काम हो सके मैंने कर डाले। मैंने इन सबका बेड़ा पार किया तभी तो आप मेरे पास आ गये। फिर क्यों न मैं ऐसा काम करूँ ? अगर मैं वैकुण्ठ न भेजता तो आप भी नहीं आने वाले थे और आपके दीदार भी नहीं होते। मैंने अपनी भलाई का फल तो पा लिया।"

भगवान स्मित बरसाते हुए बोलेः "अच्छा भाई ! उनको वैकुण्ठ भेज दिया तो कोई बात नहीं। तूने पुण्य भी कमा लिया और मेरे दर्शन भी कर लिए। अब मैं उन्हें वापस नरक भेजता हूँ।"

युवक बोलाः "भगवन् ! आप उन्हें वापस नरक में भेजोगे तो आपके दर्शन का फल क्या ? आपके दर्शन की महिमा कैसे ? क्या आपके वैकुण्ठ में आने के बाद फिर नरक में....?"

भगवानः "ठीक है। मैं उन्हें नरक में नहीं भेजता हूँ लेकिन तू अब चला जा पृथ्वी पर।"

युवकः "हे प्रभु ! मैंने इतने लोगों को तारा और आपके दर्शन करने के बाद भी मुझे संसार की मजदूरी करनी पड़े तो फिर आपके दर्शन एवं सत्कर्म की महिमा पर कलंक लग जाएगा।"

भगवान सोचते हैं- यह तो बड़े वकील का भी बाप है ! उन्होंने युवक से कहाः "अच्छा भाई ! तू पृथ्वी पर जाना नहीं चाहता है तो न सही लेकिन यह पद तो अब छोड़ ! चल मेरे साथ वैकुण्ठ में।"

युवकः "मैं अकेला नहीं आऊँगा। जिस हाथी के निमित्त से मैं आया हूँ, पहले आप उसे वैकुण्ठ आने की आज्ञा प्रदान करें तब ही मैं आपके साथ चलने को तैयार हो सकता हूँ।"

भगवानः "चल भाई हाथी ! तू भी चल।"

हाथी सूँड ऊँची करके यमराज से कहता हैः "जय रामजी की ! देखा जिन्दे मनुष्य का कमाल !"

मनुष्य में इतनी सारी क्षमताएँ भरी हैं कि वह स्वर्ग जा सकता है, स्वर्ग का राजा बन सकता है, उससे भी आगे ब्रह्मलोक का भी वासी हो सकता है। और तो क्या ? भगवान का माई-बाप भी बन सकता है। उससे भी परे, भगवान जिससे भगवान हैं, मनुष्य जिससे मनुष्य है उस सच्चिदानंद परमात्मा का साक्षात्कार करके यहीं जीते-जी मुक्त हो सकता है। इतनी सारी क्षमताएँ मनुष्य में छिपी हुई हैं। अतः अभागे विषयों एवं व्यसनों में अपने को गिरने मत दो। सावधान ! समय और शक्ति का उपयोग करके उन्नत हो जाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जागता नर सेवीए

नारायण..... नारायण.... नारायण.... भगवान के नामोच्चारण से जो लाभ होता है, यदि उस लाभ का अनुभव हो जाए तो मनुष्य फिर दूसरी ओर ध्यान ही न दे।

भगवान के नाम से हमारे अंतःकरण में, हमारे शरीर की नस-नाड़ियों में, रक्त में, हमारे विचारों में, बुद्धि में भगवान के नामोच्चारण से जो प्रभाव पड़ता है, उसका यदि ज्ञान हो जाये तो हम लोग फिर भगवन्नाम सुमिरन किये बिना रहेंगे ही नहीं। इतनी महान महिमा है भगवन्नाम की।

आदमी जब बोलता है तो क्रिया शक्ति काम करती है। जगत में देखा जाए तो क्रियाशक्ति से ही सारी चीजें होती हैं। क्रियाशक्ति का संचालन मन के संकल्प से होता है। मन जब भगवन्नाम लेता है तो भगवान की भावना मन में निर्मित होती है, जिसका प्रभाव हमारे किस-किस केन्द्र पर पड़ता है, इस बात का अगर पता चले तो आदमी साधारण से असाधारण पुरूष में परिवर्तित हो सकता है।

टेलिफोन नंबर का पता होता है तो आदमी विश्व में कहीं भी बात कर सकता है, यदि उसके पास कन्ट्री कोड, एरिया कोड और व्यक्ति के टेलिफोन का नम्बर हो। ऐसे ही विश्वेश्वर स संपर्क स्थापित करना हो तो मंत्र रूपी टेलिफोन नंबर का सही सही ज्ञान होना जरूरी है। हमारे अंदर मंत्र का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। वालिया लुटेरा मंत्रजाप के बल से ही वाल्मीकि ऋषि के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। हनुमानजी ने पत्थरों पर रामनाम का मंत्र लिखकर समुद्र में पत्थर तैरा दिये।

राम न सके नाम गुन गाई।

भगवान भी भगवन्नाम की महिमा नहीं गा सकते। भगवान से भी बड़ा भगवान का नाम कहा गया है। जिसके जीवन में मंत्रदीक्षा नहीं है, जिसके जीवन में नाम की कमाई नहीं है, उसने जो कुछ भी कमाया है, वह अपने लिये मुसीबत ही कमायी है, खतरा, चिन्ता और भय ही पैदा किया है।

नाम की कमाई निर्भय बना देती है, निर्द्वन्द्व बना देती है, निर्दुःख बना देती है। दुनिया में जितने भी दुःख हैं, वे न तो ईश्वर ने बनाये हैं, न ही कुदरत ने बनाये हैं, बल्कि सारे दुःख मन की बेवकूफी से बने है। भगवन्नाम मन की इस बेवकूफी को दूर करता है जिससे दुःख दूर हो जाते हैं।

जो लोग कहते हैं कि 'बाबा ! मैं बहुत दुःखी हूँ....' ऐसे लोगों से हम ज्यादा समय बात भी नहीं करना चाहते हैं क्योंकि बहुत दुःख तो होता ही नहीं है। बहुत दुःख बनाने की, बेवकूफी की आदत हो गयी है।

"क्या दुःख है ?"

"बहुत दुःख है बाबा !"

"अच्छा भाई ! क्या दुःख है जरा बताओ ?"

"बाबा जी ! सब तरफ से मैं दुःखी हूँ... बहुत दुःखी हूँ।"

"अच्छा भाई ! जाओ, दूसरी बार मिलना।"

उसके जीवन में न श्रद्धा का सहारा है, न नाम का सहारा है, न समझ का सहारा है। ऐसा व्यक्ति दो-चार बार चक्कर काटेगा, सत्संग में आएगा, माहौल का लाभ लेगा, भगवन्नाम जपने वालों की बातों में आयेगा, फिर अगर उसे मुलाकात देता हूँ तो ऐसे व्यक्ति के जीवन में जल्दी ही चार चाँद लग जाते हैं। सत्संग में आकर बैठने से हजारों लोगों के हरिनाम के कीर्तन व प्रभु, नाम के गुँजन के संक्रामक वायब्रेशन मिलते हैं।

जो आदमी पहली बार यहाँ आए और 'मैं दुःखी हूँ..... बहुत दुःखी हूँ....' की रट लगाये उसको यदि कुँजी बता भी दो जल्दी उसका दुःख दूर नहीं होता। इसलिए मैं कहता हूँ- "अच्छा, दो तीन बार सत्संग में आना, फिर बताऊँगा।" वह भी इसलिए कि सत्संग में आने से उसके अन्तःकरण पर, उसके रक्तकणों पर, नस-नाड़ियों पर सात्त्विक असर पड़ता है, मन शुद्ध होता है, मन की भावना काम करती है, जिह्वा की शुद्धि होती है। सत्संग में बुद्धि काम करती है तो बुद्धि की शुद्धि होती है। हरिनाम की ताली बजाने से हाथों की शुद्धि होती है। फिर उसे कोई शुद्ध बात समझता हूँ तो जल्दी असर करती है, अन्यथा नहीं करती।

तुलसीदास जी ने कहा हैः

राम भगत जग चारि प्रकारा।
सकृतिन चारहूँ अनघ उदारा।।
चहूँ चतरन कर नाम आधारा।
ज्ञानि प्रभु हि बिसेष पियारा।।

किसी भी प्रकार का जोगी हो, किसी भी प्रकार का भक्त हो, साधु हो, गृहस्थी हो या किसी भी प्रकार का व्यक्ति हो, उसके जीवन की उन्नति का मूल खोजो तो पता चलेगा कि उसने कभी न कभी किसी भी रूप में भगवन्नाम जपा है, रटा है। फिर चाहे वह संन्यासी हो, बैरागी हो, गिरी-पुरी-भारती हो या गृहस्थी हो। गृहस्थी वेश में भी बड़े-बड़े महापुरूष हो गये हैं।

मैंने सुना है कि एक बार गोरखनाथ को लगा कि हमने तो सिर में खाक डालकर इतने जोग-जतन किये हैं, योगविद्या, टेकविद्या की साधनाएँ कीं, इतने पापड़ बेले हैं तब कहीं जाकर

लोग हमको बाबाजी कहते हैं। लेकिन ये संत कबीर ? इनके तो बेटा-बेटी हैं, फिर भी हमसे अधिक आदरणीय होकर बाबाजी के रूप में पूजे जा रहे हैं !

किन्हीं ईर्ष्यालु लोगों की सीख में आकर एक दिन गोरखनाथ ने संत कबीर को रास्ते में रोक लिया और कहने लगेः

"महाराज ! कुछ सिद्धाई दिखाओ।"

कबीर जी बोलेः "भाई ! हम तो कुछ भी सिद्धाई नहीं जानते हैं। हम तो ताना-बाना बुनकर गुजारा कर लेते हैं। बस, खुद जपते हैं, दूसरों को भी जपाते हैं। हम तो और कुछ नहीं जानते।"

सच्चे संतों के हृदय में "मैं बड़ा हूँ" ऐसा भूत होता ही नहीं। 'मैं छोटा हूँ.... मैं बड़ा हूँ....' यह देह के अभिमान से होता है। बाहर की वस्तुओं में अपने से बड़ों को देखोगे तो अपने में हीनता की भावना आएगी और यदि अपने से छोटे को देखोगे तो अपने में अहंकार आएगा। यह छोटा-बड़ा तो देह के भाव से होता है। देह के अंदर जो विदेही आत्मा है, उसमें क्या छोटा और क्या बड़ा...? कबीर जी ऐसे ही थे।

देह में होते हुए, देह की गहराई में जो देह को चलाने वाला है, 'चम चम' चमकता हुआ जो चैतन्य परब्रह्म परमात्मा है, उस पर कबीर जी की निगाह थी।

कबीर जी ने तो हाथ जोड़ लियेः "बाबा ! आप तो बड़े त्यागी हैं। हम तो ऐसे ही साधारण हैं। चलो, झंझट-विवाद क्या करना महाराज !"

गोरखनाथ को तो कई अन्य साथियों ने बहका रखा था। उन्होंने कहाः "नहीं। तुम इतने बड़े महापुरूष होकर पूजे जाच रहे हो तो देख लो अब हमारी सिद्धाई।" गोरखनाथ ने अपना त्रिशूल भोंका जमीन में और योगसिद्धि का अवलम्बन लेकर, त्रिशूल पर ऊँचा आसन जमाकर बैठ गये और कबीर जी से बोलेः "अब हमारे साथ शास्त्रार्थ करो।"

कबीर जी ने देखा कि ये अब बाहर की चीजों से बड़प्पन दिखाना चाहते हैं। कबीर जी के हाथ में धागे का एक छोटा-मोटा पिंडा था। उसका एक सिरा धरती पर रखते हुए कबीर जी ने दूसरी ओर पिंडे को ऊपर फेंका। पिंडा खुलते-खुलते पूरे धागे का सिरा सीधा खड़ा हो गया।

कबीर जी ने अपनी संकल्पशक्ति से, मन शक्ति से खड़े रहे हुए सिरे के ऊपरी छोर पर जा बैठे और बोलेः "अच्छा महाराज ! आ जाओ।"

गोरखनाथः "चलो छोड़ो इसको। दूसरा खेल खेलते हैं।"

कबीर जीः "ठीक है महाराज।"

गोरखनाथः "चलो, गंगा किनारे चलते हैं। मैं भी गोता मारूँगा, तुम भी गोता मारना। मैं गोता मार के कुछ भी बन जाऊँगा। तुम मुझे खोजना।"

आदमी के तीन शरीर होते हैं। एक वह जो आँखों से दिखता है, उसे स्थूल शरीर कहते हैं। दूसरा होता है मन शरीर। स्थूल शरीर का किया कुछ नहीं होता, मन शरीर के संकल्प से ही

स्थूल शरीर घूमता फिरता है। आपके मन में हुआ कि 'चलो सत्संग में जाएँ....' तो यह बेचार स्थूल शरीर में आ गया सत्संग में।

मन शरीर में, सूक्ष्मता में जिसकी स्थिति दृढ़ होती है, वह एक स्थूल शरीर होते हुए अनेक शरीर बना सकता है। जैसे रात्रि में अनजाने में हम लोग मन शरीर में चले जाते हैं। एक व्यक्ति होते हुए भी स्वप्न में अनेक व्यक्ति बना लेते हैं। आप भी स्वप्न में अनेक व्यक्ति बनाते हैं लेकिन वह स्वप्न की, क्षीण सुषुप्ति की अवस्था है। जो योगी हैं, उनके मन की एकाग्र अवस्था है। जोगी जाग्रत अवस्था में भी अपने अनेक स्थूल शरीर बना सकता है। मन शरीर में बहुत शक्ति है। जितना भी इसका विकास करो, कम है। लेकिन मन शरीर के बाद हमारा वास्तविक स्वरूप है।

.....तो एक शरीर यह हुआ जो दिखता है। मन शरीर में जैसे संस्कार डाल दिये - गुजराती, सिंधी, पंजाबी, गरीब-अमीर, मेरा तेरा, ऐसा ही लिबास पहनेगा और दिखेगा।

वास्तव में हमारी कोई जात नहीं है लेकिन मन में सब घुसा है। ललाट पर तो कुछ लिखा नहीं है कि यह जात है या हाथ में भी जात नहीं लिखी। किन्तु जात आदि की बात मन में बैठ गई कि हम गुजराती है, मारवाड़ी हैं, पंजाबी हैं, गृहस्थी हैं, व्यापारी हैं। ये संस्कार मन में पड़ जाते हैं और मन के संस्कारों के अनुरूप ही आदमी अपने को और अपने तन को मानता है।

इसी मन शरीर का यदि सूक्ष्मता के रास्ते पर जाकर विकास किया जाए तो मन जैसा संकल्प करे, ऐसा हो भी जाता है। उदाहरणार्थः रात को स्वप्नसृष्टि बन जाती है। ऐसे ही जाग्रत में भी एकाग्र मन में संकल्प करने की शक्ति होती है।

मन जितना शुद्ध और एकाग्र होगा, उसकी संकल्प शक्ति उतनी अधिक विकसित होगी। इस प्रकार मानसिक शक्तियाँ बढ़ाना एक बात है और मन जहाँ से शक्ति ले आता है उस परमात्मा को जानकर, इस शरीर और मन को माया समझकर इनसे सम्बन्ध विच्छेद करके ब्रह्मज्ञान पा लेना, यह सबसे ऊँची बात है।

किसी-किसी ब्रह्मज्ञानी महापुरूष की मानसिक शक्तियाँ विकसित होती है और किसी ऐसे वैसे व्यक्तियों की भी मानसिक शक्तियाँ विकसित होती है। कोई ऐसे भी ज्ञानी होते हैं जिनकी मानसिक शक्ति विकसित नहीं होती फिर भी ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्मज्ञानी है, उसको मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

जैसे वेद व्यास जी महाराज। उनकी मानसिक शक्तियाँ इतनी अधिक विकसित हुई थीं कि उन्होंने प्रतिस्मृति विद्या के बल से एक बार मरे हुए कौरव-पाण्डव पक्ष के तमाम योद्धाओं को एवं कर्ण को बुलाया था।

युद्धोपरान्त धृतराष्ट्र, कुंती, गाँधारी और संजय वन में जाकर एकांतवास कर रहे थे लेकिन वे बड़े दुःखी मन से जीवन-यापन कर रहे थे। तब एकाएक वेद व्यासजी महाराज पधारे। वेद व्यासजी ने पूछाः "धृतराष्ट्र ! क्या चाहते हो ?"

धृतराष्ट्र बोलेः "और तो कुछ नहीं महाराज ! युद्ध में मारे गये पुत्रों के मुँह तक हमने नहीं देखे। हमारे बेटों से हमारा एक बार मिलन हो जाए, ऐसी कृपा कीजिए।"

वेद व्यासजी ने कहाः "मैं अमुक दिन फिर आऊँगा। इतने में तुम बहुओं को भी बुला लेना ताकि वे भी मिल लें।"

बहुएँ भी आ गईं, वेद व्यास जी महाराज भी पधारे। उन्होंने गंगा किनारे प्रतिस्मृति विद्या के बल से सन्ध्या समय के बाद मृतकों का आवाहन किया। कुछ ही पल में, गंगाजी से जैसे लोग नहाकर निकलते हैं ऐसे ही कौरव पक्ष और पांडव पक्ष के योद्धा, जो महाभारत के युद्ध के दौरान मृतक हुए थे, 'खलल....' करते हुए जल से बाहर निकले। जिस वेशभूषा में वे युद्ध के मैदान में गये थे वही वेशभूषा अब भी उन्होंने धारण कर रखी थी लेकिन एक विशेषता थी कि उन सभी के कानों में स्वर्ण के कुण्डल शोभायमान हो रहे थे और हृदय में राग-द्वेष नहीं था। उनमें सत्त्वगुण की प्रधानता थी।

कौरवों ने अपनी-अपनी पत्नी से, अपने पिता व माता से वार्तालाप किया। ऐसे वार्तालाप करते-करते शुभ भाव में ही रात्रि पूरी हो गई। प्रभात होने को थी तो वेद व्यास जी ने कहाः "अब इन्हें मैं विदा करता हूँ। जो पत्नियाँ पतिलोक को पाना चाहती हैं वे गंगा में प्रविष्ट हों। वे मेरे योगसामर्थ्य से सशरीर पतिलोक में पहुँचा दी जाएँगी।"

वेद व्यासजी ने गंगा से जिन मृतकों को प्रकट किया उनका शरीर हमारे ही स्थूल शरीर जैसा दिखता है लेकिन उसमें पृथ्वी तत्त्व एवं जल तत्त्व की कमी होती है। उस शरीर से केवल उनकी आभा नजर आती है। जो स्वर्ग में होते हैं उनका शरीर तेज, वायु और आकाश तत्त्वों से ही युक्त होता है। वे यदि संकल्प करें कि हम इन्हें दिखें तो वे हमें दिख सकते हैं अथवा हमारी इतनी सूक्ष्म अवस्था हो तो हम इन सूक्ष्म शरीरों को अथवा गंधर्व, किन्नरों को देख सकते हैं।

वेद व्यासजी महाराज प्रतिदिन आठ घंटे बैठकर बदरीकाश्रम में ध्यान करते थे और दीर्घ काल तक उन्होंने यह साधना की इसलिए उनके पास आत्मज्ञान तो था, साथ ही साथ मानसिक शक्तियाँ व रिद्धि-सिद्धियाँ भी कम नहीं थीं। इसी के बल पर उन्होंने प्रतिस्मृति विद्या का उपयोग करके मृतकों को बुलाया और उसी विद्या के बल से उनको बिदाई दी। जो पत्नियाँ पतिलोक को पाना चाहती थीं, वे भी गंगा में प्रविष्ट हुईं और पतिलोक को प्राप्त हो गईं।

आदमी सपने में जैसे बहुत कुछ बनाता और समेट लेता है ऐसे ही जागृत में यदि मन शरीर में स्थिति विकसित हो जाए तो संकल्प के बल से बहुत कुछ बन सकता है और उसका विसर्जन भी हो सकता है। तांत्रिक मंत्रों का सहारा लो तब भी हो सकता है, साबरी मंत्रों का

सहारा लो तब भी हो सकता है। यदि पुण्य बड़ा है तो वैदिक मंत्रों का सहारा लो तो सात्त्विकता और व्यवहार की पवित्रता भी बढ़ जाएगी।

तुम किसी भी मंत्र का सहारा लो, मंत्रों से तुम्हारी क्रियाशक्ति और मननशक्ति का विकास होता है और वह विकास जहाँ से आता है, वही है आत्मा..... वही है परमात्मा। जैसे गन्ना पैदा होता है तब भी रस धरती से आता है और मिर्च पैदा होता है तब भी रस धरती से आता है, मूँग, मटर, मसूर की दाल भी धरती के सहारे से है। यहाँ तक कि छोटी से छोटी घास-पात व जड़ी बूटी का सहारा भी धरती है।

ऐसे ही जिस किसी के मन में जो रिद्धि-सिद्धियाँ हैं, जो सिद्धाई आई है या ऊँचाई आई है, सभी ने उस अखंड भंडार में से ही लिया है। आज तक उस अखंड परमात्मारूपी भंडार में से ही तांत्रिकों को तंत्रसिद्धि, जापकों को जपसिद्धि, भक्तों को भक्ति, विद्वानों को विद्वता और चतुरों को चतुराई प्राप्त हुई। यहाँ तक कि सुंदरों को सुन्दरता भी उसी पिटारी से मिल रही है।

विद्वानों की विद्या उसी परमेश्वररूपी पिटारी से आती है, बुद्धिमानों की बुद्धि उसी परमात्मसत्ता से पोषित होती है। अरे ! ऐसी कोई चीज नहीं, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, ऐसा कोई देव नहीं, यश नहीं, गंधर्व नहीं, किन्नर नहीं, ऐसे कोई श्रीकृष्ण, श्रीराम, ईसा या मूसा नहीं, ऐसा कोई परमात्मा नहीं जिसने उस पिटारी के सिवाय अपना अलग से कुछ जलवा दिखाया हो।

जिसने दिखाया जलवा, वह तेरा ही दान था।
मिली जिनको मुक्ति, वह तेरा ही ज्ञान था।।
आये हो भले ही यहाँ बनके राम औ कृष्ण।
प्रकट हुआ जो उनमें भी, मेरा ही भगवान था।।

जिस किसी ने जलवा दिखाया है। उसे कहते हैं वास्तविक स्वरूप। वह आदि सत्य है। रामजी पधारे उसके पहले भी वह परमात्मा था, श्रीकृष्ण पधारे उसके पहले भी था, ईसा-मूसा तो बाद में आये। ये सब नहीं आए थे तब भी 'वह' था। आप हम नहीं थे तब भी वह परमात्मा था, आप हम हैं तब भी परमात्मा है और आपका हमारा यह शरीर चला जाएगा फिर भी वह आकाश से भी अधिक सूक्ष्म परमात्मा रहेगा। दुःख है तब भी है और सुख है तब भी है। दोनों बदल जाते हैं फिर भी वह अबदल है। गहरी नींद है तब भी है, नींद चली जाती है तब भी है.... है.... है.... है....। बस ! बदलने वाली चीजें नेति.... नेति...नेति। स्थूल-सूक्ष्म-कारण.....नेति। फिर परलोक और तपलोक नेति..... नेति हो जाते हैं। फिर भी वह रहता है। कहते हैं कि महाप्रलय में कुछ नहीं रहता। 'कुछ नही रहता' उसका ज्ञान रखने वाला तो जरूर रहता है। वह सच्चिदानंद परमात्मा है।

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नमः।।

'सच्चिदानंदस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं, जो जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के हेतु हैं तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक - तीनों प्रकार के तापों का नाश करने वाले हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 1.1)

एक सेठ आया मेहमानों को लेकर। साथ ही जवान बेटा भी था। उसने सभी को अपनी पचास-पच्चीस कमरे वाली लंबी-चौड़ी कोठी दिखाई, जो अभी बन रही थी। 'यह पूजा का कमरा... यह ध्यान का कमरा.... यह भजन का.... यह अतिथि का.... यह बाथरूम....' आदि। सारा महल देखकर सब वापस आये। मुख्य द्वार पर ताला लगाया जा रहा था तो पिता ने अपने पुत्र से कहाः "जा एक बार फिर से देखा आ। इतने सारे मेहमान थे, कोई अन्दर तो नहीं रह गया !"

बेटा जाकर सभी कमरों की जाँच करके ऊपर से ही आवाज देता हैः "पिताजी ! यहाँ कोई नहीं है।"

यह सुनकर पिता द्वार को ताला लगाने लगा। यह देखकर बेटा बोलाः

"पिता जी ! ताला क्यों लगा रहे हो ?"

पिताः "तू बोलता है न कि अन्दर कोई नहीं है !"

बेटाः "कोई नहीं है ऐसा कहने वाला मैं तो हूँ ! मुझे तो बाहर आने दो पहले !"

"मकान के अन्दर कोई नहीं है' ऐसा कहने वाला बेटा तो अन्दर है ही।

इसी प्रकार 'महाप्रलय के समय कुछ नहीं रहता' यह जानने वाला तो कोई है ही।.....और वही है परमात्मा।

प्रलय चार प्रकार के होते हैं- नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, महाप्रलय और आत्यान्तिक प्रलय। आत्यान्तिक प्रलय में कुछ नहीं रहता है। सूरज भी नहीं रहता, चन्दा भी नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का वपु भी नहीं रहता। सब प्रलय हो जाता है। कुछ नहीं रहता।

'कुछ नहीं रहता' को जानने वाला तो रहता होगा ? उसी को कहते हैं अकाल पुरूष। आकृतियाँ सब काल में आ जाती हैं। यह हमारा शरीर भी काल में ही पैदा हुआ और काल में ही लीन हो जाएगा। इस शरीर को तो काल खा जाता है लेकिन यह शरीर जिसकी सत्ता से चलता है, मन जिसकी सत्ता से शक्तियाँ लाता है, वह परमात्मा अकाल पुरूष है। वेदान्त की भाषा में वह ब्रह्म है और भक्तों की भाषा में वह शाश्वत नारायण है।

यह बिल्कुल सत्य है कि साधन भजन करने वालों को सत्संग की बहुत जरूरत है। अकेले में कितना भी मौन रखो, कितना भी जप करो, तप करो लेकिन पर्दा दूर नहीं होता है, घमंड आ जाता हैः "मैं पापी हूँ..... मैं तपी हूँ... मै त्यागी हूँ.... मैं फलाहारी हूँ..... मैं मौनी हूँ।' 'मैं' की परिच्छिन्नता व्यक्तित्त्व बन जाता है और इस 'मैं' के व्यक्तित्त्व से ही सारे झगड़े पैदा होते हैं। एक कहेगा 'मैं बड़ा' तो दूसरा कहेगा 'मैं बड़ा'। लेकिन 'मैं-मैं' करने वाले इस मन में यदि ईमानदारी से परमात्मा के नाम में और परमात्मा के ज्ञान में गोता मारने की शक्ति आ जाय तो

फिर 'मैं बड़ा' और 'मैं छोटा' का भूत चला जाता है। अपने से छोटों को देखकर अहंकार आता है और बड़ों को देखकर हीनता आती है। बड़ा और छोटा देह की नजर से दिखता है। देह में रहने वाले, देहातीत परमेश्वर की निगाह मिल जाए तो महाराज ! ये सारी झंझटें दूर हो जाती हैं।

"महाराज ! हम तो गृहस्थी लोग हैं।"

अरे भैया ! कबीरजी भी गृहस्थी ही थे !

कबीर जी की मनःशक्ति विकसित थी, कारक पुरूष रहे होंगे। गोरखनाथ जी ने कबीर जी से कहाः "चलो जल में स्नान करने के लिए। मैं गोता मारूँगा और मनःशक्ति से किसी भी स्वरूप का स्मरण करके वैसा ही बन जाऊँगा। फिर आप मुझे खोजना। आप मुझे खोज निकालें तो फिर आप गोता मारना, मैं आपको खोजूँगा। किसकी जीत होती है, यह देखा जाएगा।"

कबीर जी ने कहाः "छोड़ो भाई ! यह सब रहने दो महाराज ! आप तो बड़े जोगी महात्मा हैं..... बड़े संत हैं।"

गोरखनाथः "नहीं। सिद्ध करके दिखाओ। तुम संत-महात्मा होकर पूजे जाते हो, इतने लोग तुम्हारे पास आते हैं और हमारे लोग बेचारे भभूत रमा-रमाकर घूम रहे हैं लेकिन कोई पूछता नहीं।"

कबीर जीः "भाई ! कोई पूछता नहीं इसमें मेरा क्या दोष ? मैंने तो किसी को मना नहीं किया है महाराज। लोगों को जहाँ से लाभ मिलता है, शांति, ज्ञान और आनंद मिलता है, वहीं वे रूकेंगे। लोगों में भी तो अक्ल है, बुद्धि है, हृदयेश्वर है। लोग भी तो पारखी हैं, जग-जौहरी हैं।

यह जग जौहरी है। वह पुराना जमाना गया महाराज ! अब तो लोग बुद्धिशाली हो रहे हैं। जाँच लेते हैं, वक्ता की वाणी से ही पहचान लेते हैं कि कौन कितने पानी में है।"

गोरखनाथः "नहीं, चलो....मेरे साथ तैरना होगा।"

कबीर जीः "अच्छा तो घर से तौलिया ले चलें।"

गोरखनाथः "ठीक है।"

कबीर जी ने तौलिया लेकर पत्नी से कहा कि "मैं गंगा में स्नान के लिए जा रहा हूँ" और गोरखनाथ के साथ चल दिये।

गोरखनाथ ने जल में गोता मारा और मनःशरीर से चिंतन किया कि "मैं मेंढक हूँ.... मैं मेंढक हूँ... मैं मेंढक हूँ....' और उनकी आकृति मेंढक में बदल गई। जैसे रात में सपने में आप सोचते हैं कि 'मैं दुःखी हूँ..... मैं दुःखी हूँ....' तो दुःखद आकृति बन जाती है। 'मैं शादी कर रहा हूँ....' सोचते हो तो दूल्हा बन जाते हो, घोड़ी भी आ जाती है, बाराती भी आ जाते हैं।

आपके मन में बहुत शक्ति है क्योंकि मन जहाँ से उठता है उसका मूल छोर जो है वह सर्वशक्तिमान है। जैसे धरती से जो भी पौधा जुड़ा है वह बीज और संस्कार के अनुकूल ही सब लाता है। गुलाबवाला गुलाबी रंग लाता है, मोतिया का पौधा मोतियों की आकृति लाता है, इमली का पौधा खटाई ले आता है, गन्ना मिठास ले आता है, पपीते का पौधा भी फल में मिठास ले

आता है लेकिन मिट्टी में यदि खोजोगे, चखोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। न गुलाब दिखेगा, न इमली दिखेगी, न गन्ना दिखेगा न पपीता दिखेगा लेकिन आता सब इसी मिट्टी से है।

......और इस मिट्टी को जो सत्ता दे रहा है, वह सत्ताधीश तुम्हारे अन्तःकरण को भी सत्ता दे रहा है। अन्तःकरण मिट्टी की अपेक्षा अधिक साफ है, इसलिए मिट्टी में तो क्रियाशक्ति के साथ ज्ञानशक्ति और प्रेमशक्ति विकसित करने की भी योग्यताएँ हैं।

क्रियाशक्ति से तो तुम भी रोटी खाते हो, खून बना देते हो और खाद बना देते हो। भोजन के तीन हिस्से कर देते हो। भोजन करके उसका स्थूल हिस्सा रोज सुबह छोड़ आते हो, मध्यम हिस्से से माँसपेशियाँ बना लेते हो, सूक्ष्म हिस्से से मन और बुद्धि को सींच लेते हो। तुम ही तो यह सब कर रहे हो।

यह सब तुम कर रहे हो यह देहदृष्टि से नहीं। देह को लेकर जो चल रहा है, वह तुम हो। इस दृष्टि का यदि सहारा मिल जाय तो राग-द्वेष घट जाएगा और कबीर जी की नाई सत्पद में रूचि हो जाएगी। जैसे बिल्लौरी काँच अधिक स्थिर करते हो तो सूर्य के प्रकाश के साथ-साथ दाहक शक्ति भी आ जाती है, ऐसे ही मन को अगर ध्यानस्थ किया जाए और खूब एकाग्र किया जाए तो आत्मिक शक्तियों का विकास होगा।

जैसे पेड़ अधिक समय तक धरती से चिपका रहता है तो उसमें फल-फूल बड़े-बड़े लगते हैं लेकिन पौधा दो-चार दिन ही रहे तो उसकी अपनी सीमित योग्यता है। अर्थात् एकाग्रता जितनी बढ़िया और लक्ष्य जितना बढ़िया उतने ही आप भी बढ़िया हो। बढ़िया में बढ़िया यह है कि आप आत्मरस में रहो और दूसरों को भी आत्मरस में रंग लो।

मैं चुटकी बजाकर भभूत निकालने वाले महात्माओं से भी मिला और वे मेरे मित्र हैं। उन्होंने मुझे हाथ घुमाकर सोने की अंगूठी निकाल कर दे दी। मैंने देखी भी लेकिन मैं उनसे प्रभावित न हुआ क्योंकि मुझे ब्रह्मज्ञानी लीलाशाह जी बापू ने अकाल पुरूष का जो प्रसाद दे दिया उसके आगे यह सब बच्चों का खेल लगता है।

आप सत्संग में क्यों खिंचकर चले आते हो बार-बार? इसलिए की आपको कुछ मिलता है। संशय मिटते हैं, शांति मिलती है, माधुर्य निखरता है, ज्ञान प्राप्त होता है। पचास वर्ष अकेले भक्ति करने से जो बात समझ नहीं सकते, वह मात्र दो घंटों में समझने के लिए मुफ्त में मिल जाती है। कितना फायदा हो रहा है....!

पचास वर्ष की निष्कपट भक्ति से भी हृदय का अंधकार दूर नहीं होता है और दो घड़ी आत्मज्ञानी संतों के चरणों में बैठने से हृदय का अज्ञान दूर हो सकता है, यह श्रीमद् भागवत में भगवान श्रीकृष्ण ने ऋषियों से कहा है।

श्रीकृष्ण साधु-संतों का जब स्वागत कर रहे थे, पत्तलें बाँट रहे थे तब ऋषियों ने कहाः "कन्हैया ! तुम्हें यह सब करने की क्या जरूरत है ? तुम तो आदिनारायण हो ! यहाँ वसुदेव के

बेटे होकर लीला कर रहे हो तो क्या हुआ ? हम तो तुम्हें पहचानते हैं। ये पत्तले बाँटने से और उठाने से तुमको क्या लाभ होगा ?"

श्रीकृष्ण कहते हैं- "पचास वर्ष की निष्कपट भक्ति से हृदय का अज्ञान नहीं मिटता है, लेकिन ब्रह्मवेत्ता सत्पुरूष की सेवा से वह कार्य हो जाता है। हजारों साधुओं में आप जैसे एकाध ब्रह्मज्ञानी महापुरूष भी मिल जाएगा तो मेरी सेवा सार्थक हो जाएगी। मेरे साथ जो सेवा कर रहे हैं उनका भी कल्याण हो जाएगा। इसलिए महाराज ! मुझे पैर धोने दो।"

श्रीकृष्ण के इन वचनों से स्पष्ट होता है कि पचास वर्ष की अपने ढंग की तपस्या, व्रत या नियम भी दो घड़ी के सत्संग की बराबरी नहीं कर सकते इसलिए तुलसीदास जी की बात हमको यथार्थ और सचमुच में प्रिय लगती हैः

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, हरे कोटि अपराध।।

सत्संग में आने से पाप तो नष्ट हो जाते हैं लेकिन हमारी पुरानी आदते हैं गलतियाँ करने की, उनसे हम पुनः पाप निर्मित कर लेते हैं। ईमानदारी से यदि सत्संग में बैठा जाए तो पाप नष्ट होते ही आनंद शुरू होता है। आनंद शुरू हो गया तो हम फिर से वासनाओं के अनुसार कर्म करने लगते हैं। जैसे, कपड़ा मैला था, साफ किया, फिर मैला किया, साफ किया, फिर मैला किया.... ऐसा हम लोग करते हैं।

यदि सत्संग सुनकर एकांत में चले जाएँ, ध्यान-भजन में चले जाएँ, दूसरा कोई पाप कर्म न करें और फिर सत्संग सुनें, ध्यान करें तो थोड़े ही दिन में मन शक्ति, बुद्धिशक्ति का अनुभव कर लेंगे।

कबीर जी की मनःशक्ति का अब थोड़ा सा वर्णन कर लें-

गोरखनाथ ने मनःशक्ति से संकल्प किया कि 'मैं मेंढक बन जाऊँ.... मैं मेंढक बन जाऊँ....' और गंगा में कूदे। चिन्तन की तीव्रता थी तो वे मेंढक बन गये और दूसरे मेंढकों के बीच में छटपटाने लगे।

जो नया आदमी होता है वह नकल में भी कुछ हिलचाल कर बैठता है। मेरे पास एक जेबकतरा आया और बोलाः

"बाबा जी ! सत्संग सुनने से मैंने यह पक्का किया है कि जेब काटने का धंधा नहीं करना चाहिए। मुझे आशीर्वाद दो कि मैं अब अमुक धंधा ठीक से शुरू कर सकूँ।"

मैंने कहाः "आशीर्वाद तो तुझे दूँगा लेकिन पहले तू बता कि तुझे पता कैसे चलता है कि फलाँ आदमी की जेब में पैसे हैं ? और जेब कैसे काटता है ? मुझे दिखा तेरा यह धंधा।"

उसने ब्लेड के दो टुकड़े दिखाये और कुछ ऐसी दवा भी थी। उसने बताया किः "बाबाजी ! कभी जरूरत पड़े तो हम इस दवा का भी उपयोग करते हैं ताकि जल्दी ही कपड़ा सड़ जाय और कट जाय।"

मैंने कहाः "ठीक है, कपड़ा सड़ जाय, कट जाय। ये साधन तो मैंने देख लिये, लेकिन तुम अन्तर्यामी तो हो नहीं, ब्रह्मज्ञानियों के चेले भी नहीं हो तो ब्रह्मज्ञान भी नहीं, फिर भला तुम्हें कैसे पता चलता है कि सामने वाले की जेब में पैसे हैं ?"

वह बोलः "बाबा जी ! यह तो सीधी सी बात है। जिस जेब में पैसे होते हैं न, आदमी वहाँ बार-बार हाथ रखेगा और सम्हालेगा। बस, इतना इशारा काफी है हमारे लिये। हम पीछा कर लेते हैं यह समझकर कि बस, यहाँ माल है।"

जोगी गोरखनाथ बार-बार छटपटाने लगे तो कबीरजी समझ गये कि यह नया बन्दा है। उन्होंने मेंढक को हथेली पर उठाया और कहाः

उथी जाग जोगियड़ा रांध कयुं... अब लिक छिप लिक छिप रांध कयुं.... गोरख जल में डेडर थि वेड़ो..... कबीर तें के हाथ में खयड़ो..... हण जलदी-पलदी था जीत कयुँ.... उथी जाग जोगियड़ा रांध कयुं... राँध कयुं.... हणे राँध कयुं।

"चलो जोगी, जागो। अब तुम्हारी बारी है।" कबीर जी की यह आवाज सुनकर गोरखनाथ ने संकल्प किया। सूक्ष्म शरीर तो वही था, मेंढक में से हो गये वापस गोरखनाथ।

वह कैसा युग रहा होगा कि आदमी इच्छानुसार शरीर बना लेता था। यह अभी भी कहीं-कहीं, कभी-कभी देखने को मिलता है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने जब सखी संप्रदाय की उपासना की तब अन्य स्त्रीलक्षणों के प्रगट होने के साथ-साथ उनका मासिक धर्म भी शुरू हो गया।

किसी कैदी को जेल में फाँसी की सजा मिली। उस पर एक प्रयोग किया गया। उसको पता न चले इस प्रकार उसे चूहा कटवाया गया और उसे कहा गया कि तुझे साँप ने काटा है। वह डर कर गहराई से साँप का चिन्तन करने लगा कि मुझे साँप ने काटा है। परिणाम यह हुआ कि उसके खून में साँप का जहर बन गया। ऐसे ही आप सोचते रहेंगे किः "मैं दुःखी... मैं दुःखी...." तो आप भी दुःखी ही बन जाएँगे। सुबह उठकर भी यदि सोचते हैं कि "मैं दुःखी हूँ..... मेरा कोई नहीं... मैं लाचार हूँ...." तो देखिये कि आपका दिन कैसा गुजरता है। पूरा दिन परेशानी और दुःख में बीतेगा।

इसके विपरीत, सुबह उठकर यदि आप यह सोचें किः 'चाहे कुछ भी हो जाए, दुःख तो बेवकूफी का फल है। मैं आज दुःखी होने वाला नहीं। मेरा रब मेरे साथ है। मनुष्य जन्म पाकर भी दुःखी और चिंतित रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है। दुःखी और चिन्तित तो वे रहें जिनके माई-बाप मर गये हों। मेरे माई-बाप तो ऐ रब ! तू ही है न ! प्रभु तेरी जय हो...! आज तो मैं मौज में रहूँगा।' फिर देखो, आपका दिन कैसा गुजरता है !?

आपका मन कल्पवृक्ष है। आप जैसा दृढ़ चिंतन करते हैं, ऐसा होने लगता है। हाँ, दृढ़ चिन्तन में आपकी सच्चाई होनी चाहिए।

स्वामी विवेकानंद शिकागो में प्रवचन कर रहे थेः "आपका दृढ़ चिन्तन हो, श्रद्धा पक्की हो तो आप अगर पहाड़ को हटने का कहते चले जाओ तो वह भी हटकर आपको रास्ता दे सकता

है। जिसस ने भी कहा हैः आदमी की जितनी एकाग्रता और मनोबल होगा, श्रद्धा पक्की होगी वह उतना ही महान हो सकता है।"

एक माई ने सोचाः "श्रद्धा में इतनी शक्ति है, Faith में इतनी शक्ति है, बाईबिल मेरे घर में है और जिसस ने भी कहा है तो फिर मैं नाहक दुःख क्यों देख रही हूँ !"

वह माई चालू सत्संग में से उठकर चल दी क्योंकि उसे यह परेशानी थी कि उसके घर के पीछे एक पहाड़ होने के कारण उसके घर में सूरज की किरणें नहीं आ रही थीं। उसने सुन लिया विवेकानंद के मुख से कि अगर श्रद्धा पक्की हो तो पहाड़ से कहोः हट जा। तो वह भी हट जाएगा।

वह माई घर आई और खिड़की खोलकर पहाड़ से कहाः "ऐ पहाड़ ! आज तुझे भागना पड़ेगा। मेरे मन में श्रद्धा है, विवेकानंद ने भी कहा है और बाईबिल में भी लिखा है। मुझमें भी पक्की श्रद्धा है। मैं कहूँगी तो तुझे हटना ही पड़ेगा।"

माई ने आँख बन्द की और पुनः पहाड़ से कहाः "मैं तुम्हें श्रद्धा से कहती हूँ कि दूर हो जा..... दूर हो जा... दूर हो जा...." फिर आँख खोलकर देखा तो पर्वत वहीं का वहीं। व जोरों से हँस पड़ी और बोलीः "कमबख्त ! मुझे पता ही था कि तू जाने वाला नहीं है।"

स्पष्ट है कि व्यक्ति को गहराई में पता होता है कि काम नहीं होगा। ऊपर ऊपर से कहता रहे कि मुझे श्रद्धा है, काम हो जाएगा, तो काम नहीं होगा।

आपका सचेतन और अचेतन, दोनों ही मन, जब तदाकार होते हैं, तब यह घटना घटती है। अज्ञ लोग जिसे परमात्मा की प्रेरणा मानते हैं, देवता की प्रेरणा मानते हैं, भगवान की प्रेरणा मानते हैं, हकीकत में वह देवों के देव आत्मदेव का ही स्फुरण है। मन और प्राण जब सूक्ष्म होता है तब उस अंतर्यामी का स्फुरण होता है। इस बात को महात्मा पुरूष जानते हैं, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी जानते हैं। दूसरे लोग तो बेचारे भटक जाते हैं कि इस देवी ने कर दिया, इस कब्र-दरगाह से मेरी मनौती पूरी हुई।" अरे, वहाँ जो मुल्ला झाड़ू लगा रहा है उस बेचारे की तो कंगालियत दूर नहीं हुई और तू कैसे लखपति हो गया ?

समाज में ऐसा ज्ञान और ऐसे ज्ञान के पारखी बहुत कम होते हैं। अपना मजहब, अपना मत चलाने वालों की और 'कन्या-कन्या कुर्र.... तुम हमारे चेले..... हम तुम्हारे गुर्र....' करके दक्षिणा की लालच में चेले बनाने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

चले थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।

ऐसे हाल हो रहा है फिर भी अच्छे लोग तो अच्छे ऊँचे अनुभववाले महापुरूष को खोज ही लेते हैं और एक बार उनके श्रीचरणों में आ जाते हैं तो फिर उनका दिल कहीं भी नहीं झुकता है।

अगर सचमुच में ऊँचे ब्रह्मज्ञानी का आत्म साक्षात्कारी पुरूष का ठीक से एक बार सत्संग सुन ले तो फिर वह भले ही हजार-हजार जगह घूम ले लेकिन उसका दिल कभी धोखा नहीं खा सकता क्योंकि आत्मज्ञान बहुत ऊँची चीज है। और...

सुपात्र मिला तो कुपात्र को दान दिया न दिया।
सुशिष्य मिला तो कुशिष्य को ज्ञान दिया न दिया।
सूरज उदय हुआ तो और दीया किया न किया।
कहे कवि गंग सुन शाह अकबर ! पूरन गुरू मिला, तो और को नमस्कार किया न किया।

कबीर जी ब्रह्मज्ञानी थे। उन्होंने जल में गोता मारा और दृढ़ संकल्प किया कि मैं जलतत्त्व में ही हूँ। पाँच तत्त्व हैं- चार तत्त्व को हटा लूँ तो जल ही जल हूँ... जल ही जल हूँ। उन मन शरीर नियंत्रित था अतः जल में जल हो गये।

अब गोरखनाथ किसको खोजें ? मेंढक हो, मछली हो, कूर्म हो, और कुछ हो तो खोजें। जल में जल को कहाँ खोजें ? जल तो जल ही है। गोरखनाथ खोजते खोजते थक गये। संध्या हो गई। सोचने लगेः "कबीर तो पानी में क्या पता धँस गये.... मर गये... लाश भी नहीं मिलीती। न जाने अब क्या करें ? माई बोलेगी कि बाबा ले गया था मेरे पति को, क्या कर दिया ? कहीं शाप न दे दे।

'सचमुच ! किसी की ईर्ष्या से प्रेरित होकर किसी संत की कसौटी करना यह हमारे लिये अनुचित था। हे भगवान ! हे भोलानाथ ! तू ही कुछ दया कर"। महादेव का स्मरण किया। गोरखनाथ की मति में थोड़ा प्रकाश हुआ। गोरखनाथ ने अपना तुम्बा भरा गंगाजी में से और जाकर लोई माता से कहाः "माता जी ! आपके पति गंगाजी में समा गये। उनकी अस्थियाँ तो मैं नहीं लाया लेकिन जिस जल में वे लीन हो गये, वह जल मैं लाया हूँ माता जी ! आप मुझे क्षमा कर दो।"

लोई हँसने लगीः "मेरा सुहाग गिरा नहीं तो मेरे पति कैसे मर सकते हैं ?"

आपका यश होने वाला होता है तो दाँयी आँख फड़कती है और अपयश होने वाला होता है तो बाँयी आँख फड़कती है। यह कौन फड़कता है ? कोई भूत-प्रेत आता है क्या ? सृष्टिकर्त्ता का नियम है.... उसी की लीला है यह। पुरूष की दाँयी और स्त्री की बाँयी आँख फड़कती है तो यश एवं शुभ होता है और स्त्री का दाँयी तथा पुरूष की बाँयी आँख फड़कती है तो कुछ न कुछ गड़बड़, घर में झगड़ा या अपयश होता है। यह भले ही आप करके देखना। ऐसे और भी कई शकुन होते हैं। इस सृष्टिकर्त्ता की लीला अजीब है.... बेअंत है.... दो हाथ और तीसरा मस्तक, बस....

कह नानक सब तेरी वडीआई।

उसके सिवाय आप और अधिक कुछ कह भी नहीं सकते।

'भगवान ! तू इतना बड़ा है..... तू ऐसा है.... तू वैसा है..... तुम जितनी भी उपमा उसके पीछे लगाओ सारी की सारी छोटी हो जाएगी। 'वह असीम है....' ऐसा करने में भी ससीम की अपेक्षा वह परमात्मा असीम है। वह परमात्मा नित्य है, तो अनित्य की अपेक्षा तुम नित्य शब्द जोड़ रहे हो। बाकी तो वही है। वहाँ वाणी नहीं जा सकती। 'बेअन्त.... बेअन्त....' बेअन्त भी तुम

अन्तवालों को देखकर कहते हो। अन्यथा वह तो वही है। न बेअन्त है.... न अन्तवाला है। नानक जी ने कहा है।

मत करो वर्णन, क्या जाने वह कैसो रे।

उसका वर्णन मत करो कि वह ऐसा है, वैसा है.... क्या जाने वह कैसा है ? हाँ ! उसका चिन्तन करते-करते उसमें मति लीन हो जाती है, मति पावन हो जाती है, आपका कल्याण हो जाता है।

कोई तरंग कह दे कि 'सागर ऐसा है.... वैसा है।' तरंग ! तू शांत हो जा तो सागर बन जाएगी अन्यथा दस, बीस, पचास, सौ फीट तक भागकर तू कोई सागर की माप थोड़े ही ले लेगी ! कोई बुलबुला कह दे कि 'सागर ऐसा है वैसा है....' अरे भाई बुलबुले ! तू अपना बुलबुलापन हटा और पानी से पानी हो जा तब पता चलेगा।

कबीर तो जल में जल हो गये थे। लोई माता के आगे गोरखनाथ कहते हैं- "यह जल का तुम्बा भर लाया हूँ माता जी ! वे इसी में विलीन हुए थे।"

लोई माता पूछती हैः "कौन से जल में विलीन हुए थे ?"

गोरखनाथ बोलेः "इसी गंगाजल में।" ऐसा करके गोरखनाथ ने तुम्बे में से गंगाजल की धारा बहाई। कबीर जी संकल्प करके जल की धारा में से प्रकट हो गये।

गोरखनाथ जी कबीर जी के चरणों में गिर पड़ेः

"महाराज ! पाय लागूँ।"

कबीर जी कहते हैं- "जोगीराज कोई बात नहीं।"

कहने का तात्पर्य है कि तुम्हारे स्थूल शरीर की अपेक्षा मनःशरीर में बहुत-बहुत संभावनाएँ हैं। लेकिन उन संभावनाओं में आप उलझोगे तो कहीं अंत नहीं आएगा। मनःशरीर की तुम कितनी भी रिद्धि-सिद्धियाँ पा लो। अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ तो हनुमानजी के पास भी थीं फिर भी वे उनमें रूके नहीं और श्रीरामचंद्र जी के चरणों में श्रद्धा भक्ति की। बदले में हनुमान जी को श्रीरामचंद्र जी ने ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया तब हनुमान जी कहते हैं- "आज मैं ज्ञातज्ञेय हुआ।"

रामजी पूछते हैं- "अब तुम मुझे क्या समझते हो ?"

हनुमान जी कहते हैं- "व्यवहार जगत से आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ। जगत की दृष्टि से आप भगवान हैं, मैं जीव हूँ लेकिन तत्त्वदृष्टि से जो आप हैं वह मैं हूँ और जो मैं हूँ वही आप हैं।"

रामजी कहते हैं- "आज जीव और ब्रह्म एक हो गये।"

तत्त्व की दृष्टि से जो श्रीकृष्ण हैं, वही तुम हो, जो श्रीराम हैं, वही तुम हो। जो नानक हैं, वही तुम हो, जो कबीर जी हैं वही तुम हो लेकिन शरीर दृष्टि से, मनःशरीर से नानक का मन

बहुत ऊँचा था, अपना मन नीचा है। नानक का शरीर विलीन हो गया, अपना शरीर तो दिख रहा है, लेकिन नानक के हृदय में जो चमक रहा था, वही परमेश्वर तुम्हारे हृदय में भी चमक रहा है।

नानक फिर से आ जाए या न आयें, इसमें संदेह है, ईसा-मूसा आयें या न आयें इसमें संदेह है लेकिन ईसा-मूसा में जो तत्त्व प्रकाशित हुआ था, प्रगट हुआ था, वह अभी भी तुम्हारे हृदय में है। उसको प्रकाशित और प्रगट कर दो तो उसकी पूरी बन्दगी हो गई, पूरा आदर हो गया। उस परम तत्त्व को अपने हृदय में प्रगट करने के लिए गोरखनाथ जी ने कहाः

गोरख ! जागता नर सेवीए

जो जीवित आत्म-साक्षात्कारी महापुरूष हैं, उनकी शरण में जाओ।

गोरखनाथ जी ने सुलझे हुए महात्मा थे।

एक भूला, दूजा भूला, भूला सब संसार।
विण भूला एक गोरखा, जिसको गुरू का आधार।।

जागता नर सेवीये.... मानो हम जागते नर के पास आ गये तो फिर वे जागते नर, गुरू महाराज हमें क्या कहेंगे ?

गुरू महाराज कहते हैं कि ध्यान करो। आत्मिक शक्ति विकसित करो।

"लेकिन बाबाजी ! ध्यान नहीं लगता है।"

"भाई ! ध्यान नहीं लगता तो उसके चार कारण हैं। ये चार कारण यदि हटा दो तो ध्यान लगने लगेगा।"

एक तो आहार की अशुद्धि। उससे भी ध्यान नहीं लगेगा।

अशुद्ध आहार करोगे तो तमोगुण आयेगा, काम-विकार जगेगा, तंद्रा आएगी, आलस्य आएगा। आहार शुद्ध व अपनी कमाई का होना चाहिए। ध्यान-भजन के अभ्यास में मन लगा रहना चाहिए। अगर आप साधू हैं तो इतना अधिक भजन करें कि जिसका भोजन आप करते हैं, उसका जो कुछ हिस्सा हो वह उसको मिल जाय, बाकी की अपनी कमाई हो जाय। इसीलिए साधु पुरूषों को गृहस्थियों की अपेक्षा अधिक भजन करना पड़ता है।

गृहस्थी अपना जितना समय काम-धंधे में लगाता है साधू को उतना ही समय ईश्वर भजन व चिन्तन में लगाना चाहिए तो ही साधू प्रभावशाली होगा। अन्यथा दान का प्रभाव साधू के प्रभाव को ही दबा देगा। यदि साधना का बल है तो उसका प्रभाव बढ़ेगा।

दूसराः चित्त में अगर राग-द्वेष होगा और ध्यान में बैठोगे तो या तो मित्र को याद करोगे या शत्रु को याद करोगे। जहाँ महत्त्वबुद्धि होती है या जिसकी ओर आकर्षण अधिक होता है, आँख बन्द करने पर वही दिखेगा।

तीसरी बात है कर्म की पवित्रता।

चौथी बात है वाणी की पवित्रता। गाली गलौच करके आये अथवा सुनकर आये और ध्यान में बैठे तो उन्हीं गालियों की पुनरावृत्ति होगी और मन उधर हो जाएगा।

वाणी ऐसी बोलिए, ज्यों मनवा शीतल होय।
औरन को शीतल करे, आपहूँ शीतल होय।।

जो शीतल वाणी बोलना-जानते हैं, हृदय को शुद्ध रखना जानते हैं, उनके पास तो वशीकरण मंत्र आ जाता है।

कई लोग मुझसे पूछते हैं- "बाबा जी ! आपके पास ऐसा कौन-सा चमत्कार है कि सिंहस्थ जैसे पर्व में लाखों आदमी आपके पीछे दीवाने हो गये ? यह कोई तांत्रिक, साबरी या वैदिक चमत्कार है क्या ?"

मैंने कहाः "न तो यह कोई तांत्रिक है, न साबरी है और न वैदिक। जिससे यह सब सिद्ध होता है उस सिद्धिदाता परमात्मा को प्रेम करके फिर सबमें मेरा परमात्मा है और सबका मंगल हो ऐसा सोचकर बोलता हूँ। यही मेरा मंत्र हैं। तुम भी सीख लो तो तुम्हारा भी कल्याण हो जाएगा। मेरी तो खुली किताब है बाबा ! चाहे कहीं भी, कोई भी पन्ना खोलकर पढ़ लो।"

मेरा वशीकरण मंत्र है 'प्रेम' और यह कोई खेतों, खलिहानों या बाजारों में नहीं मिलता। प्रेम में हमेशा एक दूसरे को देने की इच्छा होती है, लेने की नहीं। शिष्य दिये बिना नहीं रहता है और गुरू भी दिये बिना नहीं रहते हैं। शिष्य आदर देता है, प्रेम करता है, गुरू भी उसका भला चाहते हैं, आदर देते है। प्रेम में दोनों तरफ से बाढ़ आती है.... आनंद बरसता है। मैं सोचता हूँ कि ऐसा कुछ ऑपरेशन करूँ कि इनको कुछ मिल जाए और शिष्य सोचता है कि ऐसा कुछ करूँ कि बाबा खुश हो जाएँ। स्वार्थ में तो लिया जाता है।

गुरू लोभी शिष्य लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों डूबे बावरे, चड़ी पत्थर की नाव।।

एक बार काशी नरेश ने कबीर जी से कहाः "महाराज ! इतने वर्ष हो गये, भागवत की कथा सुन ली, यज्ञ भी कर लिया, अनेक अन्यान्य कर्म भी कर लिये लेकिन अभी तक हृदय का बँधन दूर नहीं हुआ।"

कबीर जी ने कहाः "किस पंडित से तुमने कथाएँ सुनीं ?"

काशीनरेशः "अमुक-अमुक जो भी बड़े-बड़े पंडित थे सब को बुला-बुलाकर कथाएँ सुन लीं। अभी जो फलाने वरिष्ठ पंडित हैं उनसे हम कथा सुन रहे हैं।"

कबीर जीः "अच्छा ! मैं कल आऊँगा, लेकिन मैं जो कहूँगा, वह तुमको मानना पड़ेगा।"

काशीनरेशः "जो आज्ञा महाराज।"

कबीर जी दूसरे दिन राजदरबार में पहुँचे और राजा से बोलेः "दो घंटों के लिए मेरी हर आज्ञा का पालन होना चाहे। अपने मंत्रियों से भी कह दो।"

राजाः "जो आज्ञा।" राजा ने सिर झुकाया और अपने सभी मंत्रियों को कहा कि संत कबीर जी जो भी आदेश दें, उसे तुम मेरा आदेश समझकर तत्काल पालन करना।

कबीर जी ने मंत्रियों को आदेश दियाः "राजा को इस खम्भे से बाँध दो और कथा करने वाले पंडित को उठाकर उस सामने वाले खम्भे से बाँध दो।"

मंत्रियों ने आदेश का पालन करते हुए राजा और पंडित को पृथक-पृथक खम्भों से बाँध दिया।

"राजन ! तुम बँधे हुए हो तो इस पंडित से कहो कि आकर तुम्हें छुड़ावे।"

राजा कहता हैः "महाराज ! ये बेचारे तो खुद बँधे हुए हैं, तो मुझे कैसे छुड़ाएँगे ?"

कबीर जी कहते हैं- "ऐसे ही यह पंडित देह के अहंकार तथा अन्य विशेषताओं में बँधा हुआ है कि "मैं पंडित हूँ..... फलाँ हूँ...' लेकिन अपनी गहराई में, आत्मा में तो गया ही नहीं, फिर भला मुक्त कैसे हो सकता है ? जिसके खुद के बँधन दूर नहीं हुए, वह औरों के बँधन क्या खाक दूर करेगा ?

बँधे को बँधा मिले, छूटे कौन उपाय।
सेवा कर निर्बन्ध की, जो पल में दे छुड़ाय।।

जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से पार आत्मा-परमात्मा में पहुँचे हैं, ऐसे ब्रह्मज्ञानी की सेवा कर तो वे पल भर में ही छुड़ा देंगे, उपदेश मात्र से हृदय को आनंद और ज्ञान से भर देंगे। निर्बन्ध पुरूष ही हृदय को बँधनों से मुक्ति दे सकते हैं, जो बँधा है वह नहीं दे सकता।"

निर्बन्ध पुरूष ही संत कहलाते हैं क्योंकि उनके जन्म मरण के बँधनों का अन्त हो चुका होता है। इस निर्बन्ध पद को पाने के लिए ये चार बातें आप सदैव याद रखना और कृपा करके अमल में लाने की कोशिश करना। बहुत लाभ होगा। करोड़ों जन्मों में जितना लाभ नहीं हुआ, उतना लाभ इन चार बातों से आपको हो सकता है।

पहली बात आहार शुद्धि। आहार जो मुँह से करते हैं उतना ही नहीं, आँखों से भी अच्छा देखो। बुरा दिखते ही आँखें हटा दो। कानों से ग्रहण की जाने वाली आवाज भी शब्द आहार है।

जिसकी निन्दा सुन रहे हो वह तो आईसक्रीम खाता होगा और तुम परेशान हो रहे हो।

नाक से भी पवित्र सुगंध लो, आँख से पवित्र दर्शन करो, कान से पवित्र श्रवण करो, मुँह से पवित्र वाणी बोलो। शत्रु के लिए भी मानवाचक शब्द बोलो। इससे उसका भला हो चाहे न हो, तुम्हारा भला जरूर होगा।

शत्रु के लिए जब अपमानयुक्त कटुवचन बोलते हो तो उस समय तुम्हारा हृदय कैसा होता है, जरा परीक्षण करना। शत्रु के लिए भी मानयुक्त वचन बोलते समय आपका हृदय कैसा होता है, इसका भी परीक्षण करना। अगर मानयुक्त वचनों से आपका हृदय अच्छा हो तो आप मेरी बात स्वीकार करने की कृपा करना।

सच्चाई से प्रेम शुरू होता है, विनय से प्रेम पनपता है और ईश्वर के ध्यान से प्रेम में स्थिरता आती है। आपके हृदय में सच्चाई होगी तो लोग आपसे प्रेम करेंगे। आपके हृदय में

विनय होगा तो उनका प्रेम आपके प्रति पनपेगा। सदगुरू ने आपको ध्यान का रंग लगा दिया तो फिर आप लोगों के दिल में घर कर लेंगे। मैं सारी किताब खुली कर रहा हूँ।

"बाबाजी ! आपको इतने लोग प्रेम करते हैं ! गुजरात देखो, महाराष्ट्र देखो, मध्य प्रदेश देखो, जिधर देखो उधर देखो उधर आपके लाखों प्रेमी हैं। आप तो बस, बाबाजी ! एक आवाज मार दीजिये, हमारा काम बन जाएगा। किसी भी पार्टी के लिए आप कह दें कि यह पार्टी आना चाहिए, तो लोग उसी को वोट देंगे। हमारे लिये थोड़ा-सा कह दीजिये क्योंकि लोग आपको बहुत मानते हैं।"

मानते हैं उसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं उनको ठगता जाऊँ ? यदि ठगने के भाव से बोलूँगा तो प्रेम नहीं होगा, स्वार्थ हो जाएगा। स्वार्थ से वाणी का प्रभाव क्षीण हो जाएगा। ....और फिर परमात्मा तो देख रहा है न ! उनके हृदय में भी तो परमात्मा बसा है।

मैं किसी पार्टी के लिए कह दूँ कि इसे वोट दो तो हर पार्टी में अच्छे-बुरे लोग होते हैं। यदि मैं कहूँ कि मैं इस पार्टी का हूँ तो दूसरी पार्टी के अच्छे लोगों के लिए मुझे अन्याययुक्त बोलना पड़ेगा और अपनी पार्टी में जो गन्दे लोग होंगे, उनके भी मुझे गीत गाने पड़ेंगे। इस कारण मैं संत के स्थान से भी नीचे चला जाऊँगा।

अच्छे बुरे लोगों की गहराई में जो परमात्मा है, मैं उसकी पार्टी का हूँ... इसलिए सब मेरे हैं और मैं सबका हूँ.... ऐसा मेरा मन कहता है।

सब तुम्हारे, तुम सभी के, फासले दिल से हटा लो।

सुना है एक महात्मा के पास एक बार एक डाकू आया और बोलाः "महाराज ! मैं यहाँ, आपके सत्संग में बैठ सकता हूँ ?"

महात्मा ने कहाः "हाँ।"

डाकू ने कहाः "महाराज ! मैं चंबल की घाटी का हूँ।"

महात्मा ने कहाः "कोई बात नहीं।"

"मैं दारू पीता हूँ।"

"कोई बात नहीं।"

"मैं जुआ भी खेलता हूँ।"

"कोई बात नहीं।"

"मैं वेश्यागामी भी हूँ।"

महात्मा ने कहाः "कोई बात नहीं।"

"मैं झगड़ाखोर भी हूँ।"

"कोई बात नहीं।"

"मैं अफीम भी खाता हूँ।"

"कोई बात नहीं।"

"महाराज ! मुझमें सब बुराइयाँ हैं।"

"कोई बात नहीं।"

"महाराज ! आप मुझे स्वीकार कर रहे हैं।"

महात्मा ने कहाः "हाँ।"

उसने पूछाः "ऐसा क्यों।"

महात्मा ने कहाः "अरे, परमात्मा जब अपनी दुनिया से तुम्हें नहीं निकालता है तो मैं अपने मंडप या आश्रम से तुम्हें क्यों निकालूँ यार ! वह भी तेरे सुधरने का इन्तजार कर रहा है तो मैं क्यूँ अपना धैर्य खोऊँ ? जब उसकी हाँ है तभी तो तू यहाँ पहुँचा है। फिर मैं ना क्यों बोलूँ ? उसकी हाँ है मेरी हाँ है तो तू ना क्यों करता है ? तू भी बैठ जा यार !"

भगवान का वचन हैः

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।

'यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है तो भी ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह संपूर्ण पापों को अच्छी प्रकार तर जाएगा।'

(भगवद् गीताः 4.36)

पापी से भी पापी, दुराचारी से भी दुराचारी है और अगर ज्ञान की नाव में आ जाता है तो उसके विचार बदलेंगे, पाप छूटेंगे और फिर ईश्वर के रास्ते लगने का संकल्प करता है तो फिर वह **साधुरेव स मंतव्यमः।** उसको साधु ही मानो।

कबीर जी के पास दो भाई आये। बड़ा भाई तो सुलझा-सुथरा और सत्संगी था लेकिन छोटा भाई लोफर था। कभी किसी साधु संत के पास नहीं गया था, कभी कोई सत्संग भी नहीं सुना था। पक्का लोफर था वह।

बड़े भाई न कबीर जी से कहाः "महाराज ! इस कमबख्त को घसीटकर लाया हूँ। इसे जरा उपदेश दीजिये।"

कबीर जी ने उसे आवाज देकर बुलायाः "साधो !" तो बड़ा भाई बोलने लगाः "महाराज ! यह तो लोफर है लोफर।"

कबीर जी बोलते हैं- "तुम सत्संग सुनो, बीच में मत बोलो।" फिर छोटे भाई की तरफ इशारा करते हुए बोलेः "साधो ! चार दिन की जिन्दगी है, साधो !"

बड़ा भाई फिर टोकता हैः "महाराज ! साधु तो मैं हूँ। आपकी कथा में रोज मैं होता हूँ। यह तो मेरा भाई है.... बदमाश और लोफर है।"

कबीर जी उसे समझाते हैं- "बेटा ! धीरज रख।" और छोटे की ओर इशारा करते हैं- "साधो ! पाप का फल बुरा होता है और सत्कर्म का फल भला होता है। जिस दिन से पश्ताताप

करके मनुष्य सत्कर्म की तरफ चलता है उसी दिन से पाप मिटने लगते हैं और सत्कर्म का पुण्य बढ़ने लगता है, साधो !"

कबीर जी ने उसे बार-बार 'साधो.....साधो....' से संबोधित करके सत्संग सुनाया और सत्संग सुनकर वह घर गया। फिर केवल 'साधो.... साधो....' शब्द ही नहीं बोलने लगा अपितु कबीर जी के वाक्यों की नकल भी करने लगाः 'साधो ! पापकर्म का फल दुःखदायी होता है। साधो ! सत्कर्म का फल भला होता है।' उसे साधो बोलने में मजा आ रहा है। इस बहाने कबीरजी का चिन्तन हो रहा है। क्रियाशक्ति साधो शब्द का चिन्तन कर रही है और कबीर के चिन्तन से उसमें कबीर जी के गुण आये और वह युवक बड़े भाई से भी आगे निकल गया।

आपके कुटुम्ब में भी यदि कोई बुरे से बुरा सदस्य हो, उसे आप मानयुक्त, प्रेमयुक्त वचन बोलते हैं तो उसका शीघ्र भला होगा। आपका बेटा, बेटी, पत्नी, पति या परिवार का अन्य कोई भी सदस्य हो और उसकी हजार गलतियाँ दिखें फिर भी आपकी वाणी में, दूषित शब्दों के बजाए आदर और मानयुक्त वचन होंगे तो वह जल्दी सुधरेगा।

यदि कोई व्यक्ति गलती करे और उसकी गलती को लेकर बार-बार आप टोकते रहें तो आपका हृदय भी मलिन होता है और वह भी गहरी गलतियाँ करेगा। उसमें कोई न कोई सदगुण भी होगा है। उसके उस सदगुण को पोसते जाओ और उसकी गलतियाँ को नजर अंदाज करो। फिर देखो परिणाम।

यदि कोई गलती करने वाला है तो उसे प्यार से समझाओ किः "भाई ! ऐसी ऐसी गलतियाँ करने वाले लोग बहुत दुःखी होते हैं। तुझमें तो नहीं है लेकिन तुझसे भी अधिक गलतियाँ करने वाले हैं, उन्हें बहुत दुःख होता है। तुझमें तो यह गुण मौजूद है कि तू चाहे वह गलती छोड़ सकता है। तू सच्ची और अच्छी बात पकड़े तो बहुत आगे जा सकता है।"

मेरे पास ऐसे कई खतरनाक लोगों को लेकर उनके परिवार के लोग आ जाते हैं किः 'बाबाजी ! इसने ऐसा-ऐसा कर दिया।"

आपने देखा होगा हमारे आश्रम में पीले कपड़े में घूमने वाले लड़के, सुरेश को। उसकी माँ मेरे पास आयी और बोलीः "बाबा जी ! यह लड़का घर में चोरी करता है और बरतन बेचकर उन पैसों से फिल्में देख डालता है व सिगरेट पी जाता है। माँ के कपड़े बेचकर जुआ खेल लेता है। अभी तो 14-15 साल की उम्र है और सब काम कर चुका है। साँईं ! इसे ले जाओ, मेरी मुसीबत हटाओ।"

मैंने कहाः "चल बेटा !" .....और अभी वह लड़का सत्संग करता है और हजारों लोग सुनते हैं। विद्यार्थी शिविर चलाता है, हजार-हजार बच्चे ध्यान शिविर में उससे ज्ञान पाते हैं क्योंकि सब जगह हम नहीं पहुँच पाते इसलिए अनेक स्थानों पर आश्रम के साधकों को भेजते रहते हैं। अभी लाखों लोग उन्हें 'सुरेश बाप' व 'स्वामी सुरेशानंद' के नाम से जानते हैं।

.....तो मानना पड़ेगा कि जैसे धरती में मिर्च, इमली और नींबू का रस है, गन्ने, पपीते और अन्यान्य खट्टे-मीठे-कड़वे फलों का रस इसी धरती में है वैसे ही जहाँ बुराइयाँ हैं, उसकी गहराई में भलाइयाँ भी पड़ी हैं। तुम जैसे संस्कार डालते हो वैसे पनप आते हैं। अतः आप जरूर कृपा करना-अपने ऊपर, अपने कुटुम्बियों पर तथा मुझ पर भी।

"महाराज ! आप पर क्यों कृपा करें ?"

अरे भैया ! मेरी बात मान ली तो तुमने मुझ पर कृपा ही तो की है। आपका भला हो गया तो आपने मुझ पर कृपा कर ली है।

मैंने अपने गुरू को वचन दिया था कि आपका जो खजाना है, उसे मैं बाँटूँगा.... बाँटूँगा। मेरे गुरू को दिये हुए वचन के काम में आप भी लग गये।

एक सौ आठ आदमियों को तो रब का दर्शन गुरूजी की तरफ से कराना है और बाकी के लोगों को हमारी तरफ से होंगे। यूँ तो कइयों को हो गये, हो रहे हैं और होंगे।

गुरू की कृपा जब मुझ पर बरसी थी और ढाई दिन की समाधि के बाद, इस लाबयान, लाजवाब ईश्वरीय मस्ती के बाद, जब मैं उठा और गुरू जी से पूछा कि गुरू जी ! आपकी सेवा में, दक्षिणा में क्या अर्पण करूँ ? आप आज्ञा कीजिये।"

गुरूजी ने पूछाः "दक्षिणा देगा ?"

मैंने कहाः "हाँ।"

गुरूजी बोलेः "बस, आप तर जा, दूसरों को तारने लग जा। यही दक्षिणा है।"

महापुरूषों को क्या....?

संत सुखी परहित दरसी।

आहार हक का हो, सात्त्विक हो। पसीने का हो, लेकिन उसमें अंडा, शराब-कबाब हो तो वह ठीक नहीं। शुद्ध हो, हक का हो और बनाने वाले का विचार भी अच्छा हो तो अति उत्तम है। बनाने के बर्तन भी सात्त्विक हो। ऐसा आहार सात्त्विक होता है।

दूसरी बातः कर्म पवित्र हो। चोरी, डाका, हिंसा, घृणा से रहित कर्म जीवन की सर्वांगीण उन्नति में सहायक होते हैं।

तीसरी बातः पवित्र वचन हों। वाणी में मधुरता हो। जो जानते हो वही बोलो लेकिन सच्चा बोलो।

एक राजनेता था। उसने अपने छोटे बेटे को कहाः "अमुक-अमुक आदमी आ रहे हैं, वे पूछे कि कहाँ हैं साहब ? तो कह देना कि घर पर नहीं हैं। मैं तलधर में जाता हूँ। उनको बोलना कि पापा घर पर नहीं है।"

वे आदमी आये और बच्चे से पिता के बारे में पूछा तो वह बोलाः "पापा ने कहा है कि मैं तलघर में चला जाता हूँ। वे आदमी पूछें कि 'पापा कहाँ हैं' तो बोल देनाः पापा नहीं है।"

कितना निर्दोष बालक ! वह कितना खुश रहता है सच बोलकर ! बेईमान का हृदय खुश नहीं रहता। ऐसे बेईमानीयुक्त वचन बोलकर फिर ध्यान में बैठोगे तो जल्दी खुशी नहीं आएगी, जल्दी ध्यान नहीं लगेगा। फिर चाहे दोनों हाथ उठाकर दूसरों को आशीर्वाद देते फिरो लेकिन हृदय की खुशी की बात ही निराली है।

'अला बाँधूं.... बला बाँधूं.... भूत बाँधूं..... प्रेत बाँधूं.... डाकिनी बाँधूं..... शाकिनी बाँधूं......' ये सब तू बाँध। मना नहीं है..... लेकिन पहले अपने मन को तो बाँध, भैया ! अन्यथा तो कुछ नहीं होगा। मन अगर बँधा नहीं तो मोर के पंख कमबख्त क्या कर लेंगे और अगर मन बँधा है तो पानी के छींटे मार दे तो भी काम हो जाएगा। तेरा संकल्प बढ़िया होना चाहिए।

दिलरूबा की सुनाऊँ, सुनने वाला कौन है ?

जाम-ए-हक भर-भर पिलाऊँ, पीनेवाला कौन है ?

चाहे ईसा हो, मूसा हो, श्रीकृष्ण हों, राम हों, बुद्ध हों, महावीर हों, एकनाथ जी हो, संत ज्ञानेश्वर हों, तुकाराम महाराज हों चाहे मेवाड़ की मीरा हो.... जिन जिन पुरूषों ने अपना चित्त द्वेषरहित बनाया है, जिन्होंने अपने चित्त को चैतन्य के प्रसाद से सजाया है, वे स्वयं तो तर गये, उनके संग में आने वाले भी तर गये। वे तो निहाल हो गये, उनका दीदार करने वाले और उनके पद सुनने वाले भी सन्तुष्ट हो गये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हम नश्वर
वस्तुओं की इच्छा
वासना बढ़ाने वाला संग करके
नश्वर वस्तुओं की ही सत्यबुद्धि से
इच्छा और प्रयत्न करते हैं तो हम नश्वर
वस्तु और नश्वर शरीर प्राप्त करते जाते
हैं... फिर मरते जाते हैं.... फिर जन्मते जाते हैं।
यदि हम शाश्वत् का ज्ञान सुनें, शाश्वत की
इच्छा पैदा हो और मनन करके शाश्वत् की
गहराई में तनिक-सी खोज करें तो शाश्वत्
आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार भी हो
सकता है। सत्संग में जिनकी रूचि है
जिन्हें श्रवणार्थ आत्मज्ञान और
आत्मविज्ञान मिलता है वे लोग
सचमुच में भाग्यशाली हैं।

[अनुक्रम]

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हम नश्वर
वस्तुओं की इच्छा
वासना बढ़ाने वाला संग करके
नश्वर वस्तुओं की ही सत्यबुद्धि से
इच्छा और प्रयत्न करते हैं तो हम नश्वर
वस्तु और नश्वर शरीर प्राप्त करते जाते
हैं... फिर मरते जाते हैं.... फिर जन्मते जाते हैं।
यदि हम शाश्वत् का ज्ञान सुनें, शाश्वत की
इच्छा पैदा हो और मनन करके शाश्वत् की
गहराई में तनिक-सी खोज करें तो शाश्वत्
आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार भी हो
सकता है। सत्संग में जिनकी रूचि है
जिन्हें श्रवणार्थ आत्मज्ञान और
आत्मविज्ञान मिलता है वे लोग
सचमुच में भाग्यशाली हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ